Con. 3. VII-9.48
350

अंक 7
संख्या 9

शुक्रवार
19 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा–(*जारी*) 599
[28 से 30-(क) अनुच्छेदों पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, ता. 19 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में, प्रातः दस बजे उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में हुई।

विधान का मसौदा–(*जारी*)

अनुच्छेद 28

***उपाध्यक्षः** (डा. एच.सी. मुकर्जी): क्या हम भाग 4 के पर्यालोचन में आगे अग्रसर हों? यदि मुझे ठीक-ठीक याद है, तो संशोधन सं. 831, 832 और 833 पर कल विचार हो चुका था। इस संशोधन सं. 834 से आरम्भ करते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, इसके पूर्व कि हम एक-एक खंड पर विचार करें, मेरा यह निवेदन है कि सभा को राज्य की नीति के सामान्य प्रावधानों पर विचार-विमर्श करने का अवसर दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** मुझे खेद है कि ऐसा नहीं हो सकता।

(संशोधन संख्या 834, 835 और 836 पेश नहीं किये गये।)

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, जिस संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं, वह यह है:

''भाग 4 के नीचे शीर्षक में से 'निदेशक' शब्द निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, यह बहुत अच्छा होता, यदि श्री कामत का संशोधन मेरे संशोधन के साथ-साथ ले लिया जाता। निदेशक सिद्धान्तों के प्रावधान, जो भाग 4 में दिये हुये हैं, समान व्यवहार तथा दंड-पद्धति के सम्बन्ध में, आर्थिक योजना तथा अनेकों बातों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। निदेशक सिद्धान्तों का यह

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

अर्थ है कि राज्य के लिये वे अनिवार्य रूप से मान्य नहीं हैं और किसी भी स्थिति में वे न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय नहीं हो सकते हैं। मेरा निवेदन यह है कि यदि यह विधान इन सिद्धान्तों को किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तन किये जाने के लिये प्रावधान नहीं करता अथवा यदि वे राज्य के लिये अनिवार्य रूप से मान्य नहीं रखे जाते, तो वे निरर्थक सिद्ध होंगे। डा. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक में जो कुछ कहा है, उसकी ओर मैं माननीय सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। उन्होंने लिखा है कि विधान में इन सिद्धान्तों को मौलिक अधिकारों के रूप में रखना चाहिये तथा ऐसी योजना को दस वर्ष के अन्दर कार्यरूप दे दिया जाना चाहिये, जो इन सिद्धान्तों पर आश्रित हों। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 31 में दिये हुये देश के आर्थिक गठन को अस्पष्ट रूप में वर्णित व्यापक सिद्धान्तों पर आश्रित कर दिया गया है। यह बहुत आवश्यक है कि 'निदेशक' शब्द को निकाल दिया जाये और जैसा कि श्री कामत ने निवेदन किया है, उनको राज्य की नीति के मौलिक सिद्धान्त ठहरा दिया जाये। अत: मेरा निवेदन यह है कि 'निदेशक' शब्द अनावश्यक और निरर्थक है। इस अध्याय में दिये हुये प्रावधान केवल कोरी बातें अथवा पवित्र कामनाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगते। और डा. अम्बेडकर ने यह बिल्कुल ठीक ही कहा है कि वे न्यूनाधिक रूप में आदेशात्मक विलेख हैं। यदि वे वास्तव में आदेशात्मक विलेख हैं, तो मैं नहीं समझता कि उनको इस विधान में निहित मौलिक सिद्धान्तों के अन्दर क्यों दिया गया है। डा. अम्बेडकर ने आगे अपने भाषण में यह कहा था कि कुछ-सिद्धान्तों का हम इस कारण निर्धारण नहीं करना चाहते, जिससे कि आगे आने वाली पीढ़ी को अपनी योजना बनाने का अधिकार हो। इसके अतिरिक्त मुझे पूरे भाषण को पढ़ना आवश्यक नहीं लगता है। मैं समझता हूं कि विधान परिषद के सदस्यों की इच्छा है कि अनुच्छेद 31 में देश के लिये एक आर्थिक योजना हो। अनुच्छेद 31 में केवल यह कहा गया है कि आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य बातों में सुधार होंगे। किन्तु उन बड़ी-बड़ी सद्भावनाओं के वर्णन से लाभ ही क्या है, जो अनुच्छेद 31 में उल्लिखित हैं? अत: मैं निवेदन करता हूं कि इन सिद्धान्तों को निदेशक मानने से कोई लाभ नहीं है। उनके द्वारा जनता तथा राज्य की भलाई नहीं होगी। यह बहुत आवश्यक है कि इन समस्त सिद्धान्तों को आदेशमूलक बना दिया जाये, जिससे कि जिस योजना में ये सिद्धान्त निहित है, उसका प्रवर्त्तन दस वर्ष में हो सके।

श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं और मेरे संशोधन को श्री कामत के संशोधन के साथ पढ़े जाने पर यहां ''मौलिक अधिकार'' ऐसा पद रख दिया जाना चाहिये।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यदि मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन, श्री कामत का अनुसरण करते हैं, तो चूंकि श्री कामत ने अपना संशोधन वापस ले लिया है...।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैंने अभी अपने संशोधन को पास नहीं लिया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मेरे विचार से वे उसे पेश नहीं कर रहे हैं। बात यह है। ऐसा नहीं है कि श्री करीमुद्दीन इस अध्याय को ही नहीं चाहते हों। वे केवल यह चाहते हैं कि 'निदेशक' शब्द...।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** मैं अध्याय को चाहता हूं। मैं तो केवल यह चाहता हूं कि शीर्षक में से 'निदेशक' शब्द को निकाल दिया जाये।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** वे यह नहीं चाहते कि इस अध्याय को निकाल दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है। श्रीमान्, क्या कल हमने यह बात स्वीकार नहीं की थी कि पहले किसी अनुच्छेद पर समस्त संशोधनों को पेश कर दिया जायेगा और तत्पश्चात् अनुच्छेद पर वाद-विवाद होगा?

***उपाध्यक्ष:** श्री कामत ठीक कहते हैं। मुझे खेद है कि यह बात मेरे ध्यान से बिल्कुल ही उतर गई। वाद-विवाद बाद में होगा।

अगला संशोधन श्री कामत के नाम में है, संख्या 838। क्या आप संशोधन सं. 838 को पेश कर रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं कि:

''भाग 4 के नीचे शीर्षक में 'निदेशक' शब्द के स्थान में 'मौलिक' शब्द रखा जाये।"

[श्री एच.वी. कामत]

श्रीमान्, इस संशोधन को अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर तथा सभा के विचारार्थ प्रस्तुत करते हुये कि उसके पक्ष में केवल दो कारण आपके सामने रखना चाहता हूं। पहला यह है कि हमसे यह कहा गया है कि भाग 3 और भाग 4 में कुछ अधिकार दिये गये हैं; भाग 3 में न्याय अधिकार है और भाग 4 में वे अधिकार हैं जो न्याय नहीं हैं, परन्तु दोनों मौलिक अधिकारों के समान समझे अथवा माने जाते हैं मुझे माननीय सरदार पटेल की रिपोर्ट का समर्थन प्राप्त है। मैं समितियों की रिपोर्ट द्वितीय ग्रन्थमाला, जुलाई से अगस्त 1947 ई. तक, में से पढ़ रहा हूं। सभा के समस्त सदस्यों का इस पुस्तिका की प्रतियां इस वर्ष मार्च में दी गई थीं। मैं माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल की रिपोर्ट में से पढ़ रहा हूं, जो 30 अगस्त सन् 1947 ई. को परिषद् में उपस्थित की गई थी। उसमें वे विधान-परिषद् के अध्यक्ष को सम्बोधन करते हुये कण्डिका 2 में कहते हैं:

''हम इस परिणाम पर पहुंचे''

(''हम'' से आशय मौलिक अधिकार विषय सम्बन्धी परामर्शदात्री समिति के सदस्यों से है।)

''हम इस परिणाम पर पहुंचे कि इन मौलिक अधिकारों के साथ-साथ विधान में राज्य की नीति के कुछ निदेशक सिद्धान्तों का समावेश होना चाहिये, जो कि यद्यपि किसी न्यायालय द्वारा विचार्य्य न होंगी, परन्तु देश के प्रशासन में उनको मौलिक रूप वाला माना जायेगा।''

इस पुस्तिका के 48वें पृष्ठ पर, जिसमें उस समिति की रिपोर्ट है जिसके माननीय सरदार पटेल सभापति थे, उन्होंने इन्हीं अधिकारों का शीर्षक दिया है जिनको कि अब भाग 4 ''प्रशासन सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्त'' में रखा है। मैं डा. अम्बेडकर तथा प्रारूप-समिति के सदस्यों से यह जानना चाहूंगा कि इन अधिकारों का जो शीर्षक सरदार पटेल ने दिया था, उससे वे विमुख क्यों हुये? उस समिति ने ''प्रशासन सम्बधी मौलिक सिद्धान्त'' शीर्षक रखा था, परन्तु यहां प्रारूप-समिति ने उस शीर्षक का परिवर्तन कर ''राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त'' रखा है। सैयद करीमुद्दीन के इस तर्क में कुछ बल है कि ये दोनों प्रकार के अधिकार, अर्थात् जो न्याय हैं और जो न्याय नहीं हैं, मौलिक अधिकार है। सभा से अपने संशोधन पर विचार करने की प्रार्थना करते हुये मैं अन्त में यही कहूंगा

कि यदि यह संशोधन अस्वीकार किया जाता है, तो आप मेरे संशोधन को अस्वीकार नहीं करेंगे, वरन् सरदार वल्लभभाई पटेल की सिफारिश को अस्वीकार करेंगे।

***उपाध्यक्षः** संशोधन सं. 839 पेश नहीं किया गया। क्या संशोधन सं. 840 पेश किया जायेगा?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** सं. 840 उसी प्रकार का है, जैसा सं. 838 ।

***उपाध्यक्षः** तब तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक जिन संशोधनों पर विचार किया गया है, वे इस अध्याय के शीर्षक से सम्बन्ध रखते हैं। इस विषय पर जो सदस्य बोलना चाहते हैं, वे बोल सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, कुछ अधिकारों को न्याय रखने तथा कुछ को न्याय न रखने का प्रयोजन तो सर्वविदित है। यहां पर ये अधिकार न्याय नहीं है जैसा कि पैरा 29 में दिया हुआ है। वे किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय नहीं होंगे। श्री करीमुद्दीन चाहते हैं कि ये भी न्याय अधिकार हों। मैं यह नहीं जानता हूं कि श्री करीमुद्दीन वकील है या नहीं। खैर, उनके एक या दो विचारों के बारे में आप लोग विचार करें। अनुच्छेद 26 में यह कहा गया है कि दस वर्ष की अवधि में राज्य को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का पुनःस्थापन कर देना चाहिये। इसी को उदाहरणस्वरूप ले लीजिये। मान लीजिये कि राज्य ऐसा नहीं करता है, तो क्या कोई न्यायालय उसको ऐसा करने के लिये बाध्य कर सकेगा? किसके विरुद्ध? यदि किसी न्यायालय द्वारा डिग्री दे दी जाती है, तो उसका कौन पालन करेगा? यदि सरकार उसका पालन नहीं करती तो क्या हाईकोर्ट अथवा सर्वोच्च न्यायालय इसको मनवा सकती है? क्या सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि वह ऐसी सरकार को बदल दे? अपने अधिकार द्वारा क्या वह किसी न्यायालय के अधिकारी, किसी अमीन या शरीफ़ द्वारा सब मंत्रियों को जेल भेज सकती है और नये मंत्रियों को उनके स्थान पर रख सकती है? स्वभावतः ये केवल निदेशक ही हैं और किसी प्रकार भी न्याय अधिकार नहीं हो सकते। अतः निदेशक शब्द को निकालने से किसी आशय की पूर्ति नहीं हो सकते। अतः निदेशक शब्द को निकालने से किसी आशय की पूर्ति नहीं होती है। ये ऐसे सिद्धान्त है, जिनका, जो सरकार भी पदारूढ़ हो, उसे ही इन्हें ध्यान में रखना चाहिये और उसे इन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये। हमने विधान में उनको रख दिया है

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

क्योंकि हम उनको महत्त्वपूर्ण समझते हैं। परन्तु भाग 3 में दिये हुये मौलिक सिद्धान्तों के साथ उनका वर्गीकरण करने से तो दोनों वर्गों का अन्तर मिट जायेगा और सब अधिकार न्याय हो जायेंगे और ऐसा करना स्वभावत: अव्यवहार्य होगा। आवेश में आने से कोई लाभ नहीं है। हमें व्यावहारिक होना चाहिये। हमारे लिये यह उचित नहीं कि यहां ऐसे विभिन्न प्रावधान जोड़ते जाये जिनकी उपेक्षा कोई भी ऐसी सरकार कर सकती है, जो जनमत के प्रति उदासीन है। इन प्रावधानों अथवा अधिकारों को न्यायालय नहीं मनवा सकता है। लोकमत तथा किसी मांग के साथ लोकमत की शक्ति ही इन प्रावधानों को मनवा सकती है। चार वर्ष में एक बार निर्वाचन होगा और मतदाताओं को यह अधिकार होगा कि वह उन लोगों को फिर न भेजें, जो लोकमत के प्रति उदासीन हैं। यही वास्तविक व्यवहारशक्ति है, किसी न्यायालय का प्रामाणिककरण कुछ भी शक्ति नहीं रखता है।

अत: यह संशोधन अविचारपूर्ण है और मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह इसे स्वीकार न करे।

***श्री नज़ीरूद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, 'निदेशक' शब्द को निकाल देने के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं। केवल शीर्षक ही नहीं वरन् पूरा का पूरा अध्याय ही अविचारपूर्ण है। प्रो. शाह के संशोधन का, (संख्या 98) जिसके द्वारा वे कुछ शब्दों का इस विधान में पुर:स्थापन चाहते थे, उत्तर देते हुये अभी उस दिन डा. अम्बेडकर ने एक बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की व्याख्या की थी, जब कि उन्होंने यह कहा कि विधान में निहित करने के लिये पवित्र भावनायें उपयुक्त नहीं होती हैं। उन्होंने कहा कि ''विधान केवल एक रचना है और उसमें किसी राजनैतिक सिद्धान्त अथवा नीतियों का समामेलन न तो होना चाहिये और न उसकी आवश्यकता है''। आगे चल कर उन्होंने यह भी कहा कि ''राजनैतिक सिद्धान्त की अथवा नीतियों का निर्देश स्वयं जनता की ओर से होना चाहिए और आगे आने वाली सन्तानों की किसी नीति अथवा सिद्धान्त की घोषणा द्वारा शृंखलाबद्ध कभी नहीं करना चाहिये''। इतने उच्च अधिकारी के मुंह से निकले हुये ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। मैं निवेदन करता हूं कि इस पवित्र सिद्धान्तों की तब तक व्याख्या नहीं करनी चाहिये, जब तक कि कानून का पृष्ठपोषण न हो और उनको भी न्याय अधिकार न बना दिया जाये। डा. अम्बेडकर ने यह

और कहा कि ''पवित्र भावनाओं का पुर:स्थापन करना जनता से मत देने का अधिकार छीन लेना होगा और ये बातें 'व्यर्थ' होंगी''। मेरा निवेदन है कि यदि आप 'पवित्र सिद्धान्तों का पुर:स्थापन उनको न्याय बनाये बिना करते हैं, तो यह कुछ ऐसा ही होगा जैसा कि नव वर्ष के प्रथम दिन का किया हुआ संकल्प दूसरी जनवरी को तोड़ दिया जाता है। मैं निवेदन करता हूं कि ये पवित्र कामनायें इतनी स्पष्ट है कि उनकी व्याख्या करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि आप उनकी व्याख्या करते हैं तो आप यह भी कह सकते हैं कि लोगों को जल्दी उठना चाहिये, तथा अपने पड़ौसियों पर दया करनी चाहिये; इत्यादि, इत्यादि। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि विधान में निहित करने के लिये ये बातें उपयुक्त नहीं है और सैयद करीमुद्दीन का संशोधन स्वीकार किया जाये।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर: (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मुझे खेद है कि इन दोनों संशोधनों में से मैं एक को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। वर्तमान रूप में जैसा वाक्यविन्यास है, उसमें श्री कामत के संशोधन का समामेलन हो ही जाता है। श्री कामत देखेंगे कि ''मौलिक'' शब्द इस भाग के प्रथम अनुच्छेद में ही वर्तमान है। अत: उनके इस उद्देश्य की पूर्ति, कि इन सिद्धान्तों को मौलिकवत् समझा जाये, अनुच्छेद के शब्दों से ही हो जाती है।

'निदेशक' शब्द के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि यह आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है कि इस शब्द को रखा जाये, क्योंकि यह समझ लेना है, जैसा कि मैंने कहा था कि विधान के इस भाग के निर्माण करने में विधान-परिषद् आने वाले विधान-मंडल तथा अधिशासी वर्ग को यह बताने के लिये कुछ निदेश दे रही है कि उनको जो विधान तथा अधिशासन सम्बन्धी अधिकार मिलेंगे उनका वे किस रीति से प्रयोग करें। यदि 'निदेशक' शब्द को निकाल दिया जाये तो मुझे भय है कि कही विधान-परिषद् की इस भाग के निर्माण करने की कामना ही निष्फल न हो जाये। वह बात ठीक नहीं है जो कुछ लोगों ने यहां कही है कि इनको केवल पवित्र भावनाओं के रूप में ही विधान में रखा जा रहा है। इस परिषद् की यह मंशा है कि भविष्य में दोनों विधान-मंडल तथा अधिशासी वर्ग इस भाग में अधिनियमित सिद्धान्तों के प्रति केवल मौखिक सहानुभूति ही न रखें, परन्तु इनको उन समस्त अधिशासी तथा विधान सम्बन्धी कार्यों के लिये आधार मानें जो देश के शासन सम्बन्धी विषय में अब से अनंतर किये जायें। अत: मैं निवेदन करता हूं कि दोनों 'मौलिक' तथा 'निदेशक' शब्द आवश्यक हैं और उनको रखा जाये।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''भाग 4 के नीचे शीर्षक में से 'निदेशक' शब्द निकाल दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं सभा से अपना प्रस्ताव वापस लेने के लिये अनुमति चाहता हूं।

परिषद् की अनुमति से प्रस्ताव वापस लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संख्या 841 से 846 तक के संशोधनों को लेते हैं। प्रस्तावक महोदय एक-एक करके इनको पेश करें और फिर वाद-विवाद होगा।

संशोधन सं. 841 निषेधात्मक है, अत: यह नियम-विरुद्ध घोषित किया गया।

क्योंकि इसको पेश करने वाले सदस्य यहां नहीं हैं, अत: संशोधन सं. 842 गिर जाता है।

संशोधन संख्या 843 से 846—मि. नज़ीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं 843, 844 और 846 संख्या वाले संशोधनों को पेश करता हूं। संशोधन सं. 845 को पेश नहीं करूंगा।

श्रीमान् मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 28 में से 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

''अनुच्छेद 28 में 'requires' शब्द के स्थान में 'indicates' शब्द रखा जाये।''

''अनुच्छेद 28 में 'the state' शब्दों के स्थान में 'State' शब्द रखा जाये।''

अपने पहले संशोधन के सम्बन्ध में, जो 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' शब्दों को निकालने के लिये है, मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं। इस भाग में केवल थोड़े से प्रावधान हैं। इस अनुच्छेद में 'the State' की व्याख्या

करने का प्रयास किया गया है, जिसका आशय विधान के भाग 3 के राज्यों से है। मेरा निवेदन है कि कोई कठिनाई तथा गड़बड़ी नहीं है। यदि हम यह कहते हैं कि 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' तो इससे यह बोध भी हो सकता है कि 'the State' शब्द का 28वें अनुच्छेद द्वारा जो अर्थ रखा गया है, वह प्रसंगानुसार अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी समझ के अनुसार बदला जा सकता है। इससे अनिश्चितता तथा प्रसंग में बड़ी अनावश्यक अनिश्चितता उत्पन्न होगी। मैं यह निवेदन करूंगा कि इस शब्द की सही व्याख्या की जानी चाहिये। सच तो यह है कि 'राज्य' शब्द की व्याख्या इतने अधिक स्थानों में इतने अधिक अर्थों के लिये की गई है कि 'राज्य' शब्द को समझने में पहले से ही बड़ी गड़बड़ी हो रही है और इन शब्दों के 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' पुर:स्थापन से और भी अधिक उलझनें हो जायेंगी। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि इन शब्दों को निकाल दिया जाये और यदि आवश्यक हो तो किसी विशेष प्रसंग के सम्बन्ध में शंकाओं का निवारण प्रारूप में समुचित परिवर्तन द्वारा किया जाये।

दूसरा संशोधन केवल शाब्दिक है और मैं 'requires' के स्थान में 'indicates' शब्द रखना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में मैं और कुछ कहना नहीं चाहता हूं।

तीसरे संशोधन के सम्बन्ध में कि 'the State' शब्दों के स्थान में 'State' शब्द रखा जाये, मुझे यह निवेदन करना है कि प्रसंग में 'State' शब्द ही उपयुक्त है। यदि हम 'the State' पद की व्याख्या करें तो इससे उन खण्डों में, जिनमें यह पद प्रयुक्त है, कठिनाई उपस्थित होगी। मैं यह निवेदन करता हूं कि शब्द 'State' ही अधिक उपयुक्त है और इस विचार के लिये अपने कारण भी दे देता हूं।

मेरे विचार से जिस आस्ट्रेलिया के उदाहरण को एक अन्य प्रसंग में डा. अम्बेडकर ने उद्धृत किया था, उसका परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर है। इस संशोधन को रखने का कारण यह है कि प्रसंग में 'the State' पद अनुच्छेद 29 से 40 तक मिलता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि 'the State' शब्दों की व्याख्या

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

विधान के भाग 3 के प्रयोजन के लिये 'State' के रूप में की गई है। अत: अनुवर्त्ती अनुच्छेद 29 से 40 तक में 'the State' शब्द उपयुक्त नहीं होगा। यदि केवल एक ही राज्य है, जिसकी ओर हम संकेत करना चाहते हैं, तब तो प्रसंग में 'the State' शब्द उपयुक्त होंगे। परन्तु हमारे विचार में केवल एक 'State' अथवा 'the State' ही नहीं है, वरन् अनेकों प्रसंगानुसार अनेकों 'state' हैं। इस कारण मैंने 'State' शब्द रखा है। इस कारण मैं 'the' शब्द को निकालना चाहता हूं जो शब्द कि मेरे विचार से नितान्त अनावश्यक है। यह अंग्रेजी व्याकरण का आर्टिकल है, जिसकी परिभाषा में कोई आवश्यकता नहीं है। यदि हम परिभाषा में 'the' शब्द रखते हैं तो ये शब्द अपृथकनीय हो जाते हैं और फिर अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में इस पद का प्रयोग करने के लिये हम अनिवार्य रूप से बाध्य हो जाते हैं। अत: इस पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधनों का विरोध करता हूं। अनुच्छेद 28 में 'the State' शब्दों का प्रयोग जान कर किया गया है। इस विधान में 'State' शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में किया गया है। इसका समुच्चय-बोधक सत्ता के रूप में प्रयोग किया गया है, जो या तो केन्द्र का प्रतिनिधान करती हो या प्रान्त का। विधान के कुछ भागों में दोनों को 'State' कहा गया है। यहां 'the State' शब्दों का प्रयोग दोनों समुच्चय-बोधक तथा पार्थक्यबोधक अर्थ में किया गया है। यदि मेरे मित्र भाग 3 को देखें, जो विधान के अनुच्छेद 7 से प्रारम्भ होता है, तो उनको यह मालूम हो जायेगा कि 'State' शब्द का किस अर्थ में प्रयोग हुआ है। यदि प्रसंगवश दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग में 'the State' शब्द में भारत के शासन और संसद तथा राज्यों में प्रत्येक के शासन और विधान-मंडल तथा भारत के राज्य के क्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों का समावेश है। अत: जहां तक निदेशक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, एक ग्राम-पंचायत अथवा स्थानीय जिला सभा भी राज्य है। जिस अर्थ में हमने इन शब्दों का प्रयोग किया है, उसमें अन्तर करने के लिये हमने यह

वांछनीय समझा कि 'State' तथा 'the State' दोनों का प्रयोग किया जाये। माननीय सदस्यों को यह अन्तर विधान के अनुच्छेद 12 में भी मिलेगा, वहां हम कहते हैं:

''राज्य ('the State') कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा;

भारत का कोई जानपद किसी विदेशी राज्य (State) से कोई उपाधि स्वीकार न करेगा।''

यहां हम 'the State' शब्द का प्रयोग नहीं करते; पर प्रथम भाग में हम 'the State' शब्द का प्रयोग करते हैं। हम यह नहीं चाहते कि कोई भी प्राधिकारी चाहे वह केन्द्र का हो अथवा प्रान्तों का, किसी व्यक्ति को कोई उपाधि प्रदान करे। इस अन्तर के कारण सभा यह अनुभव करेगी कि अनुच्छेद 28 में 'the State' शब्दों का रखना उस प्रणाली के अनुकूल है–जिसकी इस विधान के बनाने में हमने अंगीकार किया है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इन तीनों संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 28 में से 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 28 में 'requires' शब्द के स्थान में 'indicates' शब्द रखा जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 28 में 'the State' शब्द के स्थान में 'State' शब्द रखा जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं अनुच्छेद 28 पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 28 विधान का भाग बन जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 28 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 29

***उपाध्यक्ष:** सभा अब अनुच्छेद 29 पर विचार-विमर्श करेगी।

अनुच्छेद 29 को निकालने का प्रस्ताव करने वाला संशोधन 847 नियम-विरुद्ध है।

प्रोफेसर के.टी. शाह अब अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

प्रो. के.टी. शाह (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

अनुच्छेद 29 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये।

''29–इस भाग में दिये हुये प्रावधान जनता के प्रति राज्य के कर्त्तव्य समझे जायेंगे, ये ऐसी रीति तथा ऐसे प्राधिकारी द्वारा प्रवर्तनीय होंगे जो इस प्रकार के प्रत्येक प्रावधान से सम्बन्धित कानून के अन्तर्गत तथा उसके अधीन समुचित समझे जायें। आवश्यक तथा समुपयुक्त कानून बनाने में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।''

इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखते समय में सर्वप्रथम डा. अम्बेडकर के उन विचारों के प्रति, जो उन्होंने कुछ मिनट पूर्व व्यक्त किये हैं। अपने उत्कट प्रशंसा के भावों को प्रकट करूंगा। उन्होंने केवल इस बात पर जोर ही न दिया कि ऐसे विषयों को हमें पवित्र सिद्धान्तमात्र के रूप में ही न छोड़ देना चाहिये, वरन् हमें उनको एक प्रकार के निदेशक सिद्धान्त भी बना देना चाहिये—जो यद्यपि आज्ञामूलक शब्द का प्रयोग तो नहीं हुआ है पर आज्ञामूलक माने जा सकते हैं। मैं उस समय कुछ दुखित हुआ था जब कि किसी पूर्व अवसर पर विद्वान् डाक्टर ने यह कहा था कि ऐसे सिद्धान्तों को निहित करने के लिये विधान कोई उपयुक्त प्रलेख नहीं है।

ऐसा लगता है कि डॉ. अम्बेडकर के समान सचेत, कुशाग्रबुद्धि वाले तथा नवविचारों के प्रति सजग व्यक्तियों में मत-परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत शीघ्र ही पूरी हो जाती है। इसीलिये यह कहने में मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उन्होंने इस विधान

में इस पावन भावनाओं को स्थान देने के लिये जिस शीघ्रता से अपना मत परिवर्तित करके स्वीकृति दी है, उसको मैं अत्यन्त सराहनीय समझता हूं। सच तो यह है कि वे एक कदम आगे बढ़ गये हैं और यद्यपि विधान में उनको अपने उचित नाम तथा शीर्षक से स्थान देने को वे प्रस्तुत नहीं है, किन्तु वे इसके लिये तैयार हैं कि ये सिद्धान्त व्यावहारिक रूप से काम में लाये जायेंगे क्योंकि विधान में भी उन्हें मूलभूत सिद्धान्त कह कर उनका उल्लेख किया गया है।

श्रीमान्, ऐसा भाव प्रकट कर देने से मैं यह आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर मेरे इस संशोधन को स्वीकार करना भी अभीष्ट समझेंगे कि इस अनुच्छेद 29, जिसे मैं समस्त विधान का अपमान समझता हूं, उसके स्थान में जो कुछ मैंने सुझाया है उसे रख लिया जाये।

श्रीमान्, अनुच्छेद 29 के पहले ही वाक्यांश से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन आदर्शों का पालन कोई न्यायालय अपने आदेश द्वारा न करा सकेगा। फल यह होगा कि केवल जिस प्राधिकारी को हम इस विधान द्वारा इस बात के लिये स्थापित कर रहे हैं कि इन विधियों के बनाने में और इस संविधान का निर्माण करने में जो भी हमारी आशायें और आकांक्षायें हैं, जो भी हमारी महत्त्वाकांक्षायें और इच्छायें हैं, वह उन सबका पालन कराये, वही प्राधिकारी इस संविधान के सब से अधिक महत्त्वपूर्ण, फलदायी तथा रचनात्मक अध्याय को काम में लाने के कर्त्तव्य से सर्वथा मुक्त हो गया होगा। सैकड़ों वर्षों का शोषण हमें सहन करना पड़ा है और सैकड़ों ही वर्ष तक हमें अपने अधिकारों से वंचित रहना पड़ा है और अपनी इच्छाओं का गला घोटना पड़ा है। और आज जब हम पुनः अपनी सत्ता को पा रहे हैं, तो स्वाभाविक है कि हम यह बात दृढ़ता से चाहें—और मुझे पूरा भरोसा है कि यह सभा भी मेरे इस आशय का पूर्ण समर्थन करेगी—कि दुःख की यह घोर निशा सदा के लिये समाप्त हो जायेगी और क्षितिज पर भगवान भास्कर की प्रथम रश्मियों के साथ ही, प्रभात की प्रथम झलक के साथ ही हम भूतकाल में अपने नेताओं द्वारा प्रदर्शित सब आशाओं को रूपवती करने के लिये एकाग्र मन से कटिबद्ध हो जायेंगे।

श्रीमान्, जैसा कि यह अध्याय है, ऐसे अध्याय के आरम्भ में भी यह नियम बना देना कि किसी न्यायालय को यह अधिकार न होगा कि वह हमारी इन आशाओं

[प्रो. के.टी. शाह]

और आकांक्षाओं को फलमयी करने का आदेश दे सके, हमारी उपर्युक्त आशा से सर्वथा असंगत है। यदि बिना किसी को उत्तेजित किये में कह सकूं, तो मैं यह कहूंगा कि यह तो ऐसा प्रावधान है जिससे कि न्यायालय को तथा अधिशासी को भी इस बात का प्रोत्साहन मिले कि वे इस बात की जरा भी परवाह न करें कि संविधान में क्या उल्लेख है और अपनी सुविधा के अनुसार अपना काम करें और इन प्रावधानों को वहीं तक मानें, जहां तक कि वे उन्हें व्यवहार में लाना ठीक समझें और इस प्रकार अग्रसर होते चले जायें, मुझे तो यह बात ऐसी हुंडी के समान लगती है, जिसे साहूकार तब चुका सकता है जब वह चुकाने के योग्य हो अर्थात् ऐसी जिसे वह तभी चुकावे, जब कि उसके आर्थिक साधन उसको ऐसा करने की सुविधा देते हों।

मैं समझता हूं कि इस विधान का मसौदा बनाने के कार्य से सम्बन्धित कोई भी ऐसा प्राधिकारी न होगा, जो हुंडी-अधिनियम में किसी ऐसे प्रावधान का समामेलन करना स्वीकार करेगा, जिसके द्वारा ऐसी हुंडी देने का अधिकार हो जिसका भुगतान समर्थ होने पर किया जाये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि मेरा संशोधन स्वीकृत न हुआ, तो अपने वर्तमान स्वरूप में यह अध्याय अपने निर्माताओं की इस धुंधली आशा की अभिव्यंजना मात्र के अतिरिक्त कुछ और न रहेगा कि हम परिस्थितियों और अवस्थाओं के अनुकूल होने पर यह बात करेंगे या वह बात करेंगे या कोई और तीसरी ही बात करेंगे। उन सबके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुये, जिन्होंने इस अध्याय के शीर्षक में 'निदेशक' शब्द के रहने देने अथवा अनेकों प्रावधानों में अनिवार्य का समावेश करने के पक्ष में भाषण दिया है, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस अध्याय में आदेश-मूलक तो कुछ है ही नहीं। श्रीमान्, उन लोगों के लिए, जो बाद में देश का शासन भार सम्भालेंगे, किसी आदेशमूलक निदेश के न होने के कारण यह सम्भव हो सकता है कि ये सब बातें, जिनकी हम इतने वर्षों से आशा करते चले आ रहे हैं तथा जिनके लिए प्रयत्न करते चले आ रहे हैं कि वे होवें ही नहीं और कम से कम हमारे जीवन काल में तो किसी प्रकार से भी न होवें। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसे कोई भी लोकप्रेमी न्यायसंगत ठहराने की इच्छा नहीं करेगा और न उसे न्यायसंगत सिद्ध करने का साहस करेगा।

श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि जब तक प्रयास नहीं किया जाता, अनेकों बातें असाध्य सी प्रतीत होती है और जब प्रयास किया जाता है, तो वे साध्य हो जाती है। वास्तव में कोई भी बात साध्य नहीं है जब तक कि प्रयास न किया जाये। शिक्षा सम्बन्धी प्राथमिक अधिकार को ही लीजिये इसकी राष्ट्र-सन्तति के लिए व्यवस्था करने में प्रत्येक शिष्ट सरकार प्रयत्नशील है। प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा तक के अधिकार की व्यवस्था इतने भद्दे ढंग से, बेमन से तथा संकोचपूर्ण रीति से की गई है कि यह आश्चर्य होता है कि आया प्रारूप लेखक इस बात के लिए उत्कंठित भी थे कि अज्ञानता के श्राप का, जो हम सबके ऊपर इतने वर्षों से लदा चला आ रहा है, निराकरण किया जाये। यहां जो प्रावधान दिया गया है, वह राज्य को दस वर्ष की अवधि में इस आकांक्षा को क्रियान्वित करने के लिए केवल 'प्रयत्न' करने का आदेश प्रदान करता है। यहां भी वह अनिवार्य नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र-बालक के लिए प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का प्राथमिक अधिकार भी आदेशमूलक नहीं है। अतः मेरा विचार है कि जब तक कुछ परिवर्तन नहीं किया जायेगा, जब तक आप इन प्रारम्भिक कर्त्तव्यों को राज्य के लिए आदेशात्मक कर्त्तव्य नहीं बनायेंगे, तब तक राज्य अथवा उसकी अंगभूत इकाइयां इन राज्यों के कर्त्तव्यों की ओर ध्यान नहीं देंगी। मेरी सम्मति में ये बहुत ही साधारण कर्त्तव्य हैं, ये ऐसे कर्त्तव्य हैं तो प्राथमिक हैं और यदि मैं ऐसा कह सकूं तो ये बड़े ही पवित्र कर्त्तव्य हैं और कोई भी व्यक्ति इन्हें असाध्य कहकर सभा का अपमान नहीं करना चाहेगा।

अब मैं अपने इन प्रावधानों के पीछे के बल के अभाव होने के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। इस बात की ओर मेरे एक विद्वान मित्र ने पहले ही संकेत किया है। एक पुराने अंग्रेजी के लेखक ने, मेरे विचार से वह वाल्टर बेजहोट था, अंग्रेजी विधान पर अपनी पुस्तक के एक सुविचारपूर्ण अध्याय में लिखा है कि पार्लियामेंट सम्राट के लिये प्रति वर्ष तक बड़ी धनराशि स्वीकृत करती है, पर किसी व्यक्ति को यह अधिकार तथा क्षमता नहीं है कि वह सम्राट को उस राशि के व्यय करने के लिए बाध्य करे। मैं इस बात से सहमत हूं। इंग्लैंड के अलिखित विधान में अभी तक कोई ऐसा वैधानिक प्राधिकारी नियत नहीं किया गया है, जो वह देखे कि स्वीकृत राशियां अवश्य खर्च की जायें। किन्तु क्या किसी भी व्यक्ति के मन में यह विचार आ सकता है कि, जब तक कि किसी मंत्री की बुद्धि भ्रष्ट न हो गई हो, कोई मंत्री एक क्षण के लिये भी यह सुझायेगा कि चूंकि इन राशियों को व्यय करने के लिये कोई बाध्यता नहीं है इसलिये व्यय न किया जाये। इसी

[प्रो. के.टी. शाह]

प्रकार क्या कोई यह सोच सकता है कि सम्राट के विशेषाधिकारों को, जैसे कि किसी व्यक्ति को पद से हटाने के अधिकार को, भूतकाल की रीति के अनुसार आज भी मनमानी तौर पर प्रयोग किया जा सकता है? श्रीमान्, मैंने इस उदाहरण को केवल इस तथ्य पर जोर डालने के लिए दिया है कि यह आप पर निर्भर है कि आप चाहें तो ऐसा संकल्प कर सकते है कि हमारे ऊपर जो अभिशाप अब तक रहे हैं, वे अब और अधिक एक क्षण के लिए भी नहीं रहेंगे। इन पवित्र आशाओं तथा आकांक्षाओं अथवा सामान्य निदेशकों को रखने से कोई लाभ नहीं है, जिनका प्रवर्त्तन जब कभी परिस्थितियां अनुकूल हों तभी हों सके। हो सकता है कि जब तक परिस्थितियों को आप अनुकूल न बनायें, वे कभी अनुकूल न हों। इसी कारण आरम्भ से ही मैं यह चाहता हूं कि ये राज्य के लिये आदेशमूलक अनिवार्य कर्त्तव्य हों, जिनकी मांग करने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार हो और इस मांग की पूर्ति की जाये। तथा यदि आप इन प्रावधानों के पीछे कोई बल रखने की तरकीब नहीं सोच पाते, यदि आप इस बात के अतिरिक्त कि इन कर्त्तव्यों के पालन न करने पर मंत्रिगण समय-समय पर होने वाले निर्वाचनों में असफल होकर अपदस्थ हो जायेंगे और कोई रीति इनके मनवाने की नहीं सोच पाते, तो यह आपकी दुर्बलता है। आपका कर्त्तव्य है कि आप कोई समुचित रीति खोज निकालें, अक्सर दुहराई पुरानी कहावत को कि जहां इच्छा है वहां पथ भी है, मैं भी दुहरा देना चाहता हूं। यदि आप यह कहें कि कोई साधन नहीं मिलता तो या तो यह इसलिए है कि अक्ल का दिवाला निकल गया है या यह इस कारण है कि जो कुछ आशा हम करते चले आ रहे थे, या जिसके लिए प्रयत्न करते चले आ रहे थे उसे पूरा करने की इच्छा का पूर्ण अभाव है।

इस सभा में ऐसे अनेकों सदस्य होंगे—मुझे विश्वास है कि उनमें डा. अम्बेडकर सबसे अग्रगण्य हैं—जिनको यह स्मरण होगा कि जब स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ने सर्वप्रथम अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी विधेयक उपस्थित किया था, तो उस समय की भारतीय सरकार के अफसरों ने अनेक प्रकार के तर्क यह सिद्ध करने के लिये उपस्थित किये थे कि इस प्रकार का कार्य असाध्य है। एक तर्क यह भी था कि दस वर्ष में तीन करोड़ रुपये का खर्च अर्थात् तीन लाख रुपया प्रति

वर्ष का खर्च उस समय की भारतीय सरकार की आर्थिक व्यवस्था के लिये बहुत भारी रकम थी। परन्तु चार वर्ष में ही वे केवल तीन करोड़ ही नहीं वरन् तीस करोड़ रुपया उस लड़ाई में बरबाद करने लगे, जिससे हमारा कोई सम्बन्ध न था और जिसके लिये हमसे परामर्श न किया गया था।

यह उस समय की दशा है, जब हम अधिकार वंचित थे, जब हम अपने देश में ही असहाय थे। परन्तु आज वह परिस्थिति नहीं है और मैं आशा करता हूं कि नई भारतीय सरकार के मंत्रियों को, स्वतंत्र भारतीय सरकार के मंत्रियों को, गणतंत्रीय भारत के स्मृतिज्ञों को इन पवित्र भावनाओं की अभिव्यंजना मात्र से संतोष न मिल जायेगा। यदि मार्ग में कोई रुकावटें हैं, तो वे केवल पार करने के लिये हैं। किसी प्रकार भी इन कठिनाइयों से हमारी उन्नति में बाधा न होनी चाहिये। अतः मैं सभा से निवेदन करता हूं, कि वह मुझ से इस बात में सहमत हो कि इस अध्याय के प्रावधानों को राज्य और नागरिक के परस्पर एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य समझे जायें। प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होना चाहिये कि वह राज्य को इन कर्त्तव्यों के प्रवर्त्तन के लिये बाध्य कर सकें, फिर चाहे ऐसा कराने का साधन कुछ भी क्यों न हो और इसके साथ-साथ राज्य को भी यह देखने का अधिकार होना चाहिये कि प्रत्येक नागरिक राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति करता है।

केवल एक बात और है जो मुझे कहनी है, इसके बाद फिर मैं समाप्त कर दूंगा। मेरे माननीय मित्र श्री रोहिणीकुमार चौधरी ने चोरों के उस दल की प्रशंसा की, जो कलकत्ता और दिल्ली के बीच चोरी करते हैं और मुझे इसके लिये सचेत किया कि कहीं वे बम्बई और दिल्ली के बीच भी चोरी न करने लग जायें। मैं उनकी इस चिन्ता के लिये बहुत कृतज्ञ हूं, जो उन्होंने मेरे तथा एक और अन्य माननीय सदस्य के प्रति प्रकट की। मैं उन्हें केवल यह आश्वासन दे सकता हूं कि उनकी शंकायें निराधार हैं, क्योंकि मैं रेल के डिब्बे में अपने बक्स में अपने संशोधनों को बन्द कर सर के नीचे रखकर यात्रा करने का अभ्यस्त नहीं हूं। मैं संशोधनों को अपने मस्तिष्क में रखकर चलता हूं। इसलिये जब तक कि चोर अपने साथ किसी कुशल सर्जन को लेकर न चलें, जो मेरे मस्तिष्क में से उन संशोधनों को निकाल सकें, तब तक वे मेरे संशोधनों को नहीं चुरा सकते और

[प्रो. के.टी. शाह]

सभा उनसे बच नहीं सकती और न श्री रोहिणीकुमार चौधरी इन संशोधनों पर विचार करने की आवश्यकता से मुक्त ही हो सकते हैं क्या मैं यह भी कह दूं कि संशोधनों के खो जाने से श्री नजीरुद्दीन की या मेरी हानि नहीं हुई। इससे सभा को हानि हुई क्योंकि हम में से जो लोग यहां आते हैं और इन संशोधनों को उपस्थित करते हैं, वे किसी विनोद अथवा उपद्रव के लिये नहीं करते हैं वरन् उनमें मानसिक श्रम लगाना पड़ता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यद्यपि मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करना चाहता, तो भी मैं अपने संशोधन पर बोलना चाहता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** एक ऐसा ही संशोधन जो 'the State' शब्दों के स्थान में 'every State' शब्द रखने के लिये था, पेश किया गया था और अस्वीकार किया गया था।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यह प्रसंग पर निर्भर है।

***उपाध्यक्षः** यदि आप बोलने का आग्रह करते हैं, तो आप बोल सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं एक मिनट से अधिक नहीं लूंगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं निवेदन करता हूं कि निरर्थक संशोधनों से बचने के लिये अध्यक्ष को सदैव यह अधिकार है कि उनको पेश करने की आज्ञा न दे। इस विषय पर सभा विचार कर ही चुकी है। इस पर विचार समाप्त हो चुका है और सिवाय इसके कि सभा का समय खोया जाये और कोई अन्य उद्देश्य प्रतीत नहीं होता। मैं निवेदन करता हूं कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन में कोई सार नहीं है और यदि फिर भी उस पर आग्रह किया जाता है, तो उसके सम्बन्ध में आपकी व्यवस्था चाहता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मुझे बहुत दुख है कि मेरे समझाने के प्रयत्न को व्यर्थ समय खोने वाला समझा गया।

***उपाध्यक्षः** मेरा निवेदन यह है कि आप को जो कुछ उन्होंने कहा है, उस पर ध्यान दिये बिना अपनी बात कहें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि: अनुच्छेद 29 में 'the State' शब्दों के स्थान में 'every State' शब्द रखे जायें।

श्री अनन्तशयनम आयंगर की बातों के बल को मैं पूर्णतया समझता हूं, परन्तु सभा के समक्ष तक कठिनाई उपस्थित करने के लिये विवश हुआ हूं। अनुच्छेद 29 में दिया हुआ है कि कानून बनाने में इन सिद्धान्तों का पालन करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। यहां राज्य का अर्थ एक राज्य से है, परन्तु राज्य अनेकों हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): क्या मैं माननीय सदस्य से यह निवेदन कर सकता हूं कि वे अनुच्छेद 29 पर ध्यान दें। 'the State' की परिभाषा इस प्रकार से की गई है कि इसका वही अर्थ है, जो इस विधान के भाग 3 में है। अत: अनुच्छेद 29 में भी 'the State' का वही अर्थ है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मसौदे में जो कठिनाई है, मैं तो उसे बता रहा था। 'the State' शब्दों को स्वीकार करके हम एक पशोपेश में पड़ गये हैं और यह पशोपेश अन्य खंडों में हमारा पीछा कर रहा है। मैं यह कहूंगा कि 'every State' शब्द अधिक उपयुक्त है। यह तथ्य कि हमने परिभाषा को स्वीकार कर लिया है, अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में निरर्थकताओं से हमें नहीं बचा सकता है। मैं निवेदन करता हूं कि प्रसंग में यह अभिव्यंजना पूर्णतया निरर्थक है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं, परन्तु मैं सम्पूर्ण अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं। श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर अनेकों संशोधन रखे गये और उनमें से अनेकों संशोधनों का प्रयोजन यही है कि इस अध्याय के लिये कुछ बन्धक बल होना चाहिये। मैंने भी एक संशोधन की सूचना दी है, जो छपी हुई सूची में 861 संख्या पर है और जिसमें यह दिया हुआ है कि ''दस वर्ष के पश्चात् राज्य की नीति के ये निदेशक सिद्धान्त जनता के मौलिक अधिकार हो जायेंगे और किसी भी न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय हो सकेंगे।'' परन्तु इस अध्याय के अनेकों अनुच्छेदों पर सावधानी से विचार करने के पश्चात् मैं यह अनुभव करता हूं कि इस प्रकार के महान् आदेश को दे देना

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

ठीक नहीं है। प्रारूप-समिति ने 14 वर्ष आयु तक के बच्चों के लिये अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिये 10 वर्ष की अवधि तथा अधिशासी वर्ग और न्यायाधीश वर्ग को पृथक् करने के लिये तीन वर्ष की अवधि तथा ऐसी ही अन्य और बातें स्वयं निर्धारित की हैं। मैं जो कुछ चाहता हूं, वह यह है कि इस अध्याय के ये निदेशक सिद्धान्त पवित्र भावनामात्र ही न रह जाये। मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह भी यह चाहते हैं कि कानून-निर्माण करने में राज्य इन मौलिक सिद्धान्तों का पालन करे। मैं उनको यह आश्वासन देना चाहता हूं कि यह तथ्य कि यह अध्याय विधान का अंग हैं, इस प्रकार की गारंटी देता है और प्रत्येक स्मृतिज्ञ को यह अधिकार होगा कि जब कोई अधिनियम परिषद् के समक्ष उपस्थित किया जाये, वह यह बताये कि वह अधिनियम इस अध्याय में निर्धारित सिद्धान्त के विरुद्ध है। अतः केवल यही तथ्य कि उनको विधान में रखा जा रहा है, यह सिद्ध करता है कि विधान के अन्तर्गत इन निदेशक सिद्धान्तों का आदर करना प्रत्येक स्मृतिज्ञ का कर्त्तव्य होगा, अतः कोई भी अधिनियम, जो इन सिद्धान्तों के विरुद्ध है, अनियमित हो जायेगा। यद्यपि इन सिद्धान्तों के प्रवर्त्तन कराने के लिये प्रत्येक नागरिक न्यायालय की शरण नहीं ले सकेगा, परन्तु प्रत्येक परिषद के अध्यक्ष को किसी विधेयक को नियम-विरुद्ध ठहराने का अधिकार होगा और उसे यह कहने का अधिकार होगा कि इस विधेयक को पेश नहीं किया जा सकता क्योंकि यह विधान के मौलिक निदेशक सिद्धान्तों के विरुद्ध है। अतः मेरा विचार है कि यह अध्याय केवल पवित्र कामनाओं का अध्याय ही नहीं है, परन्तु महान सिद्धान्तों का अध्याय है। अनुच्छेद 31 के पढ़ने से यह विदित होगा कि उसमें अनेकों उच्च सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है और मुझे आशा है कि प्रो. शाह भी इस बात को स्वीकार करेंगे कि दोनों संघ-विधान-मंडल तथा राज्य-विधान-मंडलों में, यदि इन सिद्धान्तों का पालन किया जाता है तो हमारा एक ऐसा राज्य होगा जिसमें ये सिद्धान्त लगभग मौलिक अधिकार होंगे और न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय होंगे। यह सत्य है कि इनके प्रवर्त्तन के लिये प्रत्येक व्यक्ति न्यायालय की शरण नहीं ले सकेगा, परन्तु प्रत्येक स्मृति इन सिद्धान्तों के विरोध करने वाले किसी भी विधेयक को नियम-विरुद्ध ठहरा सकेगा। इसलिये मेरा विचार है कि मेरा संशोधन, जिसके द्वारा द्रुतगति से इनके अभिपूरण करने के लिये राज्य पर एक प्रकार की समय-सीमा नियत की गई थी, जिससे कि दस वर्षों में इन समस्त सिद्धान्तों का पार्लियामेंट के अधिनियम में समामेलन हो जाये, अपनी इस समय-सीमा के कारण कुछ

कठिनाइयां उत्पन्न कर देगा। मैं आशा करता हूं कि मेरा आशय इस तथ्य से समझ लिया जायेगा कि यह भाग विधान का अंग होगा और प्रत्येक परिषद् के लिये यह अपेक्षित होगा कि वह इस भाग में दिये हुये सिद्धान्तों का आदर करे और यह ध्यान रखे कि इस अध्याय में दिये हुये सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई भी अधिनियम पारित न हो। अतः मेरा विचार है कि जो मित्र इस अनुच्छेद को केवल पवित्र कामना का अध्याय समझते हैं, वे सही नहीं है। यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जो उन सिद्धान्तों को निर्धारित करता है जो राज्य की नीति का संचालन करेंगे और इस प्रकार वे देश की जनता को प्रस्तावना में दिये हुये महान् आदर्श की प्राप्ति का आश्वासन देंगे। इसलिये मैं आशा करता हूं कि प्रो. के.टी. शाह ने अपने संशोधन में जिस विरोध को प्रकट किया है, उस पर जोर नहीं दिया जायेगा। इस कारण मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री हुसैन इमाम** (बिहार : मुस्लिम): क्या मैं पूछ सकता हूं कि प्रस्तावकों के अतिरिक्त इन संशोधनों पर अन्य व्यक्ति वाद-विवाद में क्या भाग नहीं ले सकते?

***उपाध्यक्षः** यदि आप मेरी दृष्टि में पड़ जाते, तो मैं आपको अवसर देता।

***श्री हुसैन इमामः** मैंने यह समझा था कि संशोधनों पर मत लेकर जब उन पर विचार समाप्त कर दिया जायेगा, तब वाद-विवाद होगा।

***उपाध्यक्षः** नहीं कल यह निश्चय किया गया था कि माननीय सदस्य दोनों पर, संशोधन पर तथा अनुच्छेद पर भी बोल सकते हैं।

***श्री हुसैन इमामः** वाद-विवाद से सभा के अन्य सदस्यों को भी अवसर प्राप्त होगा।

***उपाध्यक्षः** आप खड़े क्यों नहीं हुये?

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 29 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'29–इस भाग में दिये हुये प्रावधान जनता के प्रति राज्य के कर्त्तव्य समझे जायेंगे, ये ऐसी रीति तथा ऐसे अधिकारी द्वारा प्रवर्त्तनीय होंगे, जो इस प्रकार के प्रत्येक प्रावधान से सम्बन्धित कानून के अन्तर्गत तथा उसके अधीन समुचित समझे

[उपाध्यक्ष]

जायें। आवश्यक तथा समुपयुक्त कानून बनाने में इन सिद्धांतों का अनुसरण करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।' ''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 29 में 'the State' शब्दों के स्थान में 'every State' शब्द रखे जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 29 विधान का भाग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैंने यह कहा था कि मैं इस अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं; मैं खड़ा भी हुआ था।

***उपाध्यक्ष:** मैंने आपको नहीं देखा। क्या आप अनुच्छेद 30 पर नहीं बोल सकते हैं?

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** अनुच्छेद 29 बहुत महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद हैं।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब लौटने में असमर्थ हूं। अनुच्छेद 30 पर बोलने का मैं आपको अवसर दूंगा।

***श्री अमियकुमार घोष** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं ठीक पद्धति जान सकता हूं? जब कोई खंड सभा में रख दिया जाता है, तो क्या सदस्य को यह अधिकार नहीं है कि वह उसके पक्ष अथवा विपक्ष में बोले?

***उपाध्यक्ष:** अवश्य है।

***श्री अमियकुमार घोषः** परन्तु मेरे विचार से इस अनुच्छेद के बारे में ऐसा अवसर नहीं दिया गया। संशोधनों पर मत ले लिया गया। जब खंड पर मत लिया जा रहा था तो अनेकों सदस्य समस्त खंड का विरोध करने को खड़े हुये थे। मेरे विचार से सही पद्धति यह है कि संशोधन पर मत लेने और उनके गिर जाने के पश्चात् समस्त खंड सभा में रखा जाये। उस समय यदि कोई सदस्य उसका विरोध करना चाहता है तो उसे विरोध करने का अधिकार है, अथवा इसी प्रकार समर्थन करने का अधिकार है। वे समस्त खंड पर बोल सकते हैं। यही सही पद्धति है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, कल आपने यह व्यवस्था दी थी और वह स्वीकार कर ली गई थी कि दो पृथक्-पृथक् वाद-विवाद करने की अपेक्षा एक बार ही दोनों अर्थात् संशोधनों और अनुच्छेद पर वाद-विवाद होगा और संशोधनों पर मत लेने के पश्चात् बिना किसी वाद-विवाद के अनुच्छेद पर भी मत लिया जायेगा और उसे स्वीकृत अथवा अस्वीकृत घोषित किया जायेगा। यह आपकी व्यवस्था थी और हम उसका अनुसरण कर रहे हैं। पृथक् वाद-विवाद की, एक संशोधन के लिये और दूसरा अनुच्छेद के लिये, आवश्यकता नहीं है।

***श्री अमियकुमार घोषः** वह समस्त विधान के लिये व्यवस्था नहीं थी, वह केवल अनुच्छेद 3 के लिये ही थी। मेरे विचार से श्री आयंगर एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे हैं।

***उपाध्यक्षः** वही पद्धति अंगीकार कर ली गई थी। (*बाधायें*) कृपा कर के मुझे बोलने दीजिये। क्या मैं आगे कहूं? (*बी. पोकर साहब बहादुर से, जो खड़े हो गये थे*) क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मुझे यह देख कर बड़ा दुख हुआ कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर बहुधा अध्यक्ष के कार्य को स्वयं अपने ऊपर ले लेते हैं। (*बाधायें*)

***उपाध्यक्षः** शांति, शांति।

बी. पोकर साहब बहादुरः श्रीमान्, वे अध्यक्ष को सदैव आदेश देते हैं। वास्तव में...(*बाधायें*)

***कुछ माननीय सदस्यगणः** वापस लीजिये।

बी. पोकर साहब बहादुरः मैं एक सच बात की ओर संकेत कर रहा हूं। अभी...

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): श्रीमान्, वे एक माननीय सदस्य की निन्दा कर रहे हैं।

***उपाध्यक्षः** शांति, शांति।

बी. पोकर साहब बहादुरः मैं तो सच बात कह रहा हूं। उन्होंने अभी यह कहा कि संशोधनों के प्रस्तावों और खंड के विरुद्ध प्रस्तावों पर साथ-साथ वाद-विवाद करना चाहिये। सच तो यह है कि जब श्री महबूबअली आये और उन्होंने खंड के विरुद्ध बोलना चाहा, तो अध्यक्ष महोदय ने उन से यह कहा कि संशोधनों के समाप्त करने के पश्चात् जब कि खंड सभा के समक्ष आवे, उस समय आपका बोलना उचित होगा। जो कुछ भी हो किसी प्रश्न का निर्णय करना अध्यक्ष का कार्य है।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है। बड़े दुख की बात है कि एक माननीय सदस्य उपाध्यक्ष तथा सभा के माननीय सदस्यों का ध्यान कुछ प्रश्नों की ओर आकर्षित करने के लिये कूदकर जा पहुंचते हैं, जब कि उन प्रश्नों पर स्वयं उपाध्यक्ष महोदय को ध्यान देना चाहिये। यह बात कि उपाध्यक्ष महोदय ने उन पर ध्यान नहीं दिया है, सिद्ध करती है कि या तो वे स्वयं इन बातों को चाहते हैं अथवा वे ही उनकी व्यवस्थायें हैं। उन माननीय सदस्य का कोई कर्त्तव्य नहीं है कि वे इस सभा को अथवा माननीय उपाध्यक्ष महोदय को कोई ऐसा मार्ग बतावें, जिसको उन्हें स्वयं सोचना चाहिये। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इससे अध्यक्ष पद का अपमान होता है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप ऐसी बातों को सहन न करें और कार्रवाई में ऐसे उपद्रव न होने दें।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं यह निवदेन करूं कि श्री आयंगर ने केवल उस प्रणाली को दुहराया है, जिसके अनुसार अपनी कार्रवाई संचालन करना इस सभा ने अंगीकार कर लिया था। कल जो कुछ पारित किया गया था, सभा को उसकी याद दिलाने में श्री आयंगर ने मेरी समझ में तो कोई गलती नहीं की। मुझे बहुत दुख है

कि वक्ताओं ने उन बातों को ठीक-ठीक नहीं समझा। मैं चाहता हूं कि हम पूर्णतया एकरूप होकर कार्य करें और किसी प्रकार का मिथ्या भ्रम उत्पन्न न होने दें। हमको यहां स्वच्छ तथा निर्मल हृदय लेकर आना चाहिये और परस्पर विश्वास करने के लिये उद्यत रहना चाहिये। प्रजातंत्र में सदैव ऐसा ही होता है कि अल्पसंख्यक केवल अपने विचार उपस्थित कर सकते हैं और बहुसंख्यकों पर जोर डालने का प्रयत्न कर सकते हैं तथा बहुसंख्यकों के आदेश पर अपने को छोड़ सकते हैं। प्रजातंत्र का यही अर्थ है जैसा कि मैंने अपनी क्षुद्र बुद्धि से समझा है। निःसन्देह सभा के कार्य का संचालन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि कुछ नियमों का केवल अक्षरशः ही नहीं, वरन् श्रद्धापूर्वक भावतः पालन भी नहीं किया जाता। जैसा कि मैं कह चुका हूं कि यदि श्री महबूबअली मेरी दृष्टि में पड़ जाते तो मैं उन्हें बोलने का अवश्य अवसर देता। यदि माननीय सदस्य मेरे कार्य-संचालन का सूक्ष्म परीक्षण करें और इस बात पर विचार करें कि किस प्रकार मैंने सभा की कार्रवाइयों के संचालन करने का प्रयत्न किया है, तो उनको यह विदित होगा कि कुछ ऐसे समूहों को सुविधा प्रदान करने में मैंने अपने मार्ग का परित्याग कर दिया है, जो कि वर्तमान समय में यह समझते हैं कि उनमें इतनी शक्ति नहीं है कि अपनी आवाज़ सुना सकें। मेरी यह नीति रही है और इस नीति के पालन करने में बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने मुझे पूर्ण सहयोग किया है, जिस बात के लिये मैं कृतज्ञ हूं। इन परिस्थितियों में, श्री पोकर साहब, मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप कृपाकर अपना स्थान ग्रहण करें और जिस प्रकार से मैं उत्तम समझूं, उस प्रकार से मुझे सभा की कार्रवाइयों का संचालन करने दें और किसी का अपमान न करें, जिससे मुझे दुख हो—न श्री आयंगर का, जो यहां हमारी सहायता करने के लिये हैं और न मेरा, जो समस्त सभा के लिये संतोषप्रद कार्रवाई का संचालन करने में अपनी क्षुद्र योग्यताओं के अनुसार भरसक प्रयत्न कर रहा है। क्या आप कृपा कर अपना स्थान ग्रहण करेंगे?

***बी. पोकर साहब बहादुरः** आपने जिस विनम्र रूप में अल्पसंख्यक लोगों को सुविधा प्रदान करने के हेतु अपनी उत्कण्ठा प्रकट की है, उसके लिये धन्यवाद देने के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं। मुझे भी इस बात के लिये आपसे क्षमा मांगनी चाहिये कि आपने यह समझा कि किसी प्रकार से भी मेरा

[बी. पोकर साहब बहादुर]

आशय आपका या आयंगर साहब का अपमान करने से था। मैं तो आपको केवल यही बता रहा था कि आपने जो कुछ कहा, उसको हम कितना गलत समझे और यह कि समस्त संशोधनों पर वाद-विवाद समाप्त हो जाने के पश्चात् हमने सोचा कि हमें और भी अवसर मिलेंगे। श्रीमान्, आपने अल्पसंख्यकों को अपने भाव प्रकट करने के लिये अवसर प्रदान करने के सम्बन्ध में जिस रूप से अपनी उत्कण्ठा प्रकट की है, उसके लिये मैं आपका आभारी हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं एक सुझाव रख सकता हूं? जब मैंने इस प्रकार का समझौता कर लिया है कि कोई माननीय सदस्य किसी विशेष अवसर पर बोल सकेगा, तो उस समय वह सामने के स्थानों को ग्रहण कर ले, जिससे कि मेरी दृष्टि में आने में उनको अधिक कठिनाई न हो। मैं एक बार फिर सभा को यह आश्वासन दूं कि अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के व्यक्तियों को हर प्रकार की समभाव्य सुविधा प्रदान करने में, मैं अपनी पूर्ण शक्ति का उपयोग करूंगा।

***श्री हुसैन इमाम:** क्या मैं निवेदन कर सकता हूं कि आप अपनी व्यवस्था को और स्पष्ट रूप में रख दें, क्योंकि जिस समय यह व्यवस्था दी गयी थी, उस समय मैं उपस्थित न था। इस कारण मैं चाहता हूं कि सभा के मार्ग-प्रदर्शन के लिये सर्वप्रथम उसका स्पष्टीकरण कर दिया जाये। मेरा विचार स्वयं यह हुआ था कि आपकी व्यवस्था का यह आशय था कि जो सदस्य संशोधनों पर बोल चुके हों, उनको मूल प्रस्ताव पर भाषण देने का और अधिकार नहीं है। उसका यह आशय कदापि नहीं था कि जैसे ही संशोधन पेश किया जाता है और अनुच्छेद का प्रस्तावक यह कह देता है कि उसे स्वीकार किया गया अथवा अस्वीकार, तो वाद-विवाद समाप्त हो जाता है। उसका केवल यही आशय है कि वाद-विवाद का अन्त केवल वहीं तक होता है जहां तक कि उस संशोधन का सम्बन्ध है, मूल अनुच्छेद पर वाद-विवाद जारी रह सकता है। इस सम्बन्ध में मैं आपको याद दिलाऊंगा कि ज्योंही डा. अम्बेडकर ने संशोधनों पर अपनी सम्मति दी, त्योंही मैं खड़ा हो गया; अत: मैं अनुच्छेद पर अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण रूप से अधिकारी था तथा मैं आपकी दृष्टि में भी आ गया था। इस प्रतिबंधित प्रणाली

पर मैं आपकी व्यवस्था चाहता हूं, आया कि जैसा मैंने समझा है, वह सही है या गलत।

***उपाध्यक्षः** मैंने आपकी बात समझ ली है। सर्वप्रथम संशोधन पेश किये जाते हैं और जो सदस्य उनको पेश करते हैं वे समस्त खंड पर भी बोल सकते हैं। तत्पश्चात् माननीय सदस्यों को यह अवसर दिया जाता है कि वे संशोधन तथा स्वयं अनुच्छेद पर भी वाद-विवाद कर सकते हैं; इसके पश्चात् डा. अम्बेडकर उत्तर देते हैं और वाद-विवाद समाप्त हो जाता है। मैंने इसको इसी प्रकार समझाने का प्रयत्न किया है और अब से अनंतर इसी पद्धति पर अनुसरण किया जायेगा।

***श्री हुसैन इमामः** यह स्पष्ट है कि मूल अनुच्छेद पर वाद-विवाद समाप्त हो जायेगा। संशोधन पर वाद-विवाद समाप्त हो सकता है, न कि सामान्य वाद-विवाद।

श्री रामसहाय (संयुक्त राज्य : ग्वालियर व इन्दौर): सभापति जी, मेरा यह निवेदन है कि अमेंडमेंट पर जो बहस शुरू होती है और हाउस के सामने जो अमेंडमेंट आते हैं, उन पर कई मेम्बर इसलिये नहीं बोलना चाहते कि यह अमेंडमेंट निरर्थक है, बेकार है और उनका कोई उपयोग नहीं है। तो ऐसी सूरत में यह हालत हो जायेगी कि असल दफा पर कोई बहस नहीं हो सकेगी। इसलिये मेरा अर्ज करना यह है कि जो अमेंडमेंट इस किस्म के आपके सामने बहुत ज्यादा आ रहे हैं, उन पर बोलना पसन्द नहीं करते और वैसे ही खत्म हो जाते हैं। तो फिर असल दफा पर बोलना ज्यादा जरूरी हो जाता है और उस पर बहस करना जरूरी है।

इसलिये मेरा निवेदन है कि जो अमेंडमेंट बेकार है और बिना बहस पेश किये गए हैं, वे खत्म कर दिए जायेंगे और असल दफा पर जरूरी बहस करनी चाहिए।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, सभा के विभिन्न वर्गों के प्रति आप जो सहानुभूति प्रकट करते चले आ रहे हैं, उसकी प्रशंसा करते हुये मैं इस प्रश्न का स्पष्टीकरण करना चाहता हूं। मान लीजिये कि किसी अनुच्छेद पर अनेकों संशोधन पेश किये जाते हैं, तो उन संशोधनों पर वाद-विवाद होगा और उसके पश्चात् माननीय प्रस्तावक महोदय, उसका उत्तर देंगे।

[श्री मुहम्मद इस्माइल साहब]

मैं यह जानना चाहता हूं कि प्रस्तावक महोदय के, मेरा प्रयोजन कानून-मंत्री से है, उत्तर देने के पश्चात् वह अनुच्छेद सामान्य वाद-विवाद के लिये सभा के समक्ष रहेगा या नहीं। यह हो सकता है कि संशोधनों का सम्बन्ध अनुच्छेद के कुछ भागों से ही हो। अन्य ऐसे भाग हो सकते हैं जिन पर माननीय सदस्य कुछ कहना चाहते हों। इस कारण मैं आपसे यह बात स्पष्ट करने के लिये निवेदन करता हूं कि समस्त संशोधनों पर विचार कर लेने के पश्चात् क्या सदस्यों को अनुच्छेद पर बोलने का अधिकार है या नहीं।

***उपाध्यक्षः** जो कुछ मैंने कहा था वह यह है; मान लीजिये चार संशोधन है। उनको एक-एक करके पेश किया जाता है। संशोधनों के पेश करने और प्रारूप-समिति के सभापति के उत्तर देने के अन्तर्वर्त्ती काल में अन्य सदस्य वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं और वे संशोधनों पर ही नहीं, वरन् अनुच्छेद पर भी बोल सकते हैं।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहबः** मेरा प्रश्न यह है कि संशोधन पर विचार कर लेने के पश्चात् क्या सदस्यों को संशोधित अथवा मूल अनुच्छेद पर बोलने का अधिकार नहीं है—मैं यह जानना चाहता हूं। उचित तो यह है कि सदस्यों को अनुच्छेद पर बोलने का अवसर दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** उनको ऐसा अवसर है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** उपाध्यक्ष महोदय, इस अवसर का आशय यह है कि डा. अम्बेडकर के बोलने के बाद में!

***उपाध्यक्षः** नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** यह देखकर कदाचित् आश्चर्य होता है कि जो व्यक्ति विधान-मंडलों में रहे हैं, वे ऐसी आपत्ति करते हैं। हम जानते हैं कि पहले प्रस्ताव पेश किया जाता है और फिर उस विशेष खंड अथवा संकल्प पर समस्त संशोधन पेश किये जाते हैं। इसके पश्चात् दोनों संकल्प तथा संशोधनों पर वाद-विवाद होता है। उसके बाद संशोधनों पर मत लिया जाता है और फिर खंड पर। उस प्रथा से विमुख नहीं होना चाहिये, जिसका संघीय विधान-मंडल में अनुसरण किया जाता है।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से और अधिक वाद-विवाद करने से कोई लाभ नहीं है। मेरी यह व्यवस्था अन्तिम है। मैं और अधिक वाद-विवाद नहीं होने दूंगा।

***श्री नवाब मुहम्मद इस्माइल खां:** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): संशोधन के पेश हो जाने के पश्चात्...

***उपाध्यक्ष:** मुझे भय है कि आप इस बात को न समझ सके कि व्यवस्था दी जा चुकी है। मैं इस पर फिर से वाद-विवाद कराना नहीं चाहता।

***श्री नवाब मुहम्मद इस्माइल खां:** वाद-विवाद में सुविधा के लिये संशोधनों के पेश हो जाने के बाद अध्यक्ष कृपा कर यह कह दिया करें कि अनुच्छेद पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है, जिससे कि लोग प्रस्ताव पर बोल सकें।

अनुच्छेद 30

***उपाध्यक्ष:** सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 30 को विधान का भाग माना जाये।''

पहला संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है यह नियम-विरुद्ध है। दूसरा संशोधन श्री दामोदरस्वरूप सेठ के नाम से है।

***श्री दामोदरस्वरूप सेठ** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान् मैं प्रस्ताव रखता हूं कि अनुच्छेद 30 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

''30—राज्य का यह प्रयास होगा कि प्रजातंत्रीय सामाजिक व्यवस्था की स्थापना तथा संधारण द्वारा लोक-हित, लोक-कल्याण तथा लोक-उन्नति की वृद्धि करे और इस प्रयोजन के लिये राज्य अपनी नीति का संचालन:

(क) संचार के प्रमुख साधन, ऋण और विनिमय, खनिज पदार्थों के साधन तथा प्राकृतिक शक्ति के साधन और ऐसे अन्य महान अर्थ सम्बन्धी व्यावसायिक धंधों, जो सामाजिककरण के लिये उपयुक्त हों, का स्वामित्व जनता को हस्तांतरण कराने;

(ख) सार्वजनिक उपयोगिताओं के लिये स्थानीय स्वशासनाधिकार दिलाने;

(ग) सहकारिता के आधार पर कृषि, ऋण तथा उद्योगों के संगठन का प्रोत्साहन करने;

के निमित्त करे।''

[श्री दामोदरस्वरूप सेठ]

श्रीमान्, इस संशोधन को उपस्थित करने का कारण यह है कि मेरे विचार से अनुच्छेद का वाक्य-विन्यास जैसा इस समय है वह उस रूप में बड़ा ही अनिश्चित तथा अस्पष्ट है और उससे यह स्पष्ट भाव प्रकट नहीं होता कि सामाजिक व्यवस्था का क्या आर्थिक रूप स्थापित किया जा रहा है। हम सब जानते हैं कि जिस समाज में हम आजकल रह रहे हैं, उसकी व्यवस्था अथवा उसका स्वरूप पूंजीवाद पर आश्रित है और हम समाज में दोनों शोषक तथा शोषित वर्गों को साथ-साथ उपस्थित देखते हैं। और यह स्वाभाविक बात है कि शोषक वर्ग आराम और मजे में है और शोषित वर्ग दबे हुये और पिसे हुये हैं। हम सबको यह भली भांति विदित है कि ऐसी समाज में जनसमूह का वास्तविक हित तथा श्रमिकों का वास्तविक कल्याण तब तक न तो सुरक्षित रह सकता है और न उसकी वृद्धि की जा सकती है, जब तक कि समाज में से शोषक वर्गों का सफाया न कर दिया गया हो। और यह सफाया तभी हो सकेगा जब कि हमने लोकतंत्रीय साम्यवादी व्यवस्था स्थापित कर दी होगी, और जब कि उत्पादन, संचार, साख, विनिमय, के साधनों को तथा खनिज पदार्थ, प्राकृतिक शक्ति तथा अन्य ऐसे आर्थिक उद्योग-धन्धों को जो—जिनका समाज के नियंत्रण में रखे जाने का समय आ चुका है—हमने हस्तांतरित करके लोक स्वामित्व के अधीन कर दिया हो और जब कि लोकोपयोगी आर्थिक संस्थाएं नगरमंडलों के हाथ में दे दी हों और जब कि हमने कृषि साख तथा उद्योग-धंधों के संगठन को सहकारिता प्रणाली के आधार पर निर्मित करने के लिये लोगों को प्रोत्साहित किया हो।

जहां तक मैं जानता हूं, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने निर्वाचन सम्बन्धी नीति-घोषणा पत्र में सार्वजनिक उपयोगिताओं, संचार, उत्पादन, साख और विनियम के साधनों के स्वामित्व का जनता को हस्तांतरण करने की प्रतिज्ञा की थी। कांग्रेस की आर्थिक समिति की रिपोर्ट भी इस सिद्धान्त को मानती है। इसके अभाव में हम उस सामाजिक प्रजातंत्रीय व्यवस्था की स्थापना नहीं कर सकते हैं, जिसमें जनता के वास्तविक हित साबित हो सकें। श्रीमान्, हमको प्रयास करना चाहिये कि हमारे सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जाये कि अंग्रेजी शासन की ही तरह हमने भी प्रतिज्ञाओं को भंग करने का विचार मन में रख कर ही ये प्रतिज्ञाएं की थीं। यहां हम प्रजातंत्र तथा लोक-हित की बातें तो बहुत करते हैं; परन्तु व्यवहार में हमें

प्रजातंत्र बहुत सूक्ष्म अंश में अथवा नहीं के ही बराबर दिखाई देता है। शासक की स्वेच्छा आज भी कानून के रूप में वर्तमान है। यदि हम वास्तव में यह चाहते हैं कि जनसमुदाय के लिये कुछ किया जाये और उनके लिये वास्तविक हित का प्रापण किया जाये तो हमें समझ लेना चाहिये कि यह केवल सामाजिक प्रजातंत्रीय व्यवस्था द्वारा ही समभाव्य हो सकेगा। और यदि हम ऐसी व्यवस्था की स्थापना के लिये वास्तव में उत्सुक हैं, तो इस विधान में हमें यह निर्धारण कर देना चाहिये कि जिस व्यवस्था की हम स्थापना करने जा रहे हैं, वह सामाजिक प्रजातंत्रीय अथवा प्रजातंत्रीय सामाजिक व्यवस्था होगी। उसके शब्द जितने स्पष्ट हो सकते हैं, उतने स्पष्ट होने चाहिये जिससे कि जब कभी शासकवर्ग अपने स्वार्थ-साधन के लिये उसके अर्थ में परिवर्तन करना आवश्यक समझे, तो वह ऐसा न कर सके।

इन शब्दों के साथ मै अपना संशोधन परिषद की स्वीकृति के लिये उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सं. 864 उसी प्रकार का है, जैसा कि सं. 863 । अत: उसके पेश करने की आवश्यकता नहीं है। क्या सं. 867 पेश हो चुका?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जी हां, मैं उसे पेश करता हूं।

मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 30 में से 'strive to' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, अनुच्छेद में, यह पैरा इस प्रकार है:

''The State shall strive to promote the welfare of the people...''

मैं 'strive to' शब्दों को हटाने के पक्ष में हूं। फिर अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''The State shall promote the welfare of the people...''

श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यह व्यवस्था करके कि ये अधिकार विचार्य नहीं होंगे, हमने इस अनुच्छेद को बहुत अशक्त बना दिया है और इस पर भी लोक-हित की वृद्धि के साथ प्रयास 'shall strive' लगाकर हम इस अनुच्छेद को और भी अधिक अशक्त कर रहे हैं। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यदि विधान में इन अधिकारों का पुरस्थापन किया जाता है, तो इसे इस प्रकार रखना चाहिये कि ''राज्य लोकहित की वृद्धि करेगा'' न कि केवल ''प्रयास करेगा'' (strive to)।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

जिस रूप में प्रावधान है उसका अर्थ यह है कि राज्य से लोक-हित की वृद्धि की आशा नहीं की जाती है, बल्कि उससे ऐसा करने के लिये प्रयास की ही आशा की जाती है। अतः अनुच्छेद को कुछ व्यावहारिक अर्थ देने के हेतु इन शब्दों को निकाल दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 870 को पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 30 में 'National life' शब्दों के पूर्व 'the' शब्द को निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, इस संशोधन की सूचना देने की मेरी इच्छा नहीं थी और वह यह सोचकर कि यह बहुत ही निम्न श्रेणी का संशोधन है, परन्तु 'the' शब्द मेरे कानों को बहुत खटका और अन्त में मैंने उसे भेजने का निश्चय किया। मैं इतना धृष्ट नहीं हूं कि विद्वान् मित्र डा. अम्बेडकर अथवा प्रारूप-समिति के उनके योग्य साथियों को भाषा के विषय में सलाह दूं। परन्तु मुझे यह आशा है कि इस उदाहरण में 'the' शब्द जितना मुझे कर्ण-कटु है, उतना ही उनको भी विचार करने पर मालूम होगा; यह ललितोच्चारण के नियमों का उल्लंघन करता है। अतः मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे इसे निकाल दें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्षः** सं. 871 पेश नहीं किया गया।

अब अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***महबूबअली बेग साहब बहादुरः** श्रीमान्, सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन (सं. 863) तथा इस अनुच्छेद दोनों का ही मैं विरोध करता हूं। कारण यह है कि इस संशोधन द्वारा एक विशेष राजनैतिक विचारधारा के कुछ सिद्धान्तों का विधान में समावेश करने का प्रयास किया जा रहा है। मेरा विचार यह है कि विधान में किसी भी राजनैतिक विचारधारा के सिद्धान्तों का समावेश नहीं होना चाहिये।

इसी आधार पर मैं इस अनुच्छेद का भी विरोध करता हूं। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के प्रश्न की परीक्षा दो बातों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिये। अर्थात् एक प्रजातंत्रीय सिद्धांत और दूसरी इन सिद्धान्तों की प्रावर्त्तनीयता। पहली बात के बारे में मैं यही कहना चाहता हूं कि जैसा आप सब लोग जानते हैं, संविधान की प्रस्तावना में प्रजातंत्रात्मक लोकतंत्र अथवा राज्य को स्थापित करने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त संविधान के मुख्य भाग में ऐसे प्रजातंत्र की, जिसे साधारणतया परिषदात्मक प्रजातंत्र कहते हैं, व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार संविधान में जिस अधिशासी की व्यवस्था की गई है, उसे परिषदात्मक अधिशासी कहा जाता है और जो इसलिये पदारूढ़ होती है कि चुनाव में निर्वाचकगण ने अधिक संख्या में उसके दल के लोगों को चुन दिया है और जो संसद के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। अत: यह प्रत्यक्ष है कि देश में आवश्यक रूप में अनेकों दल होंगे, जो संसद में चुनाव द्वारा आने का प्रयत्न करेंगे। इन राजनैतिक दलों के भिन्न-भिन्न विशिष्ट विचार, आदर्श, विचारधारा, कार्यक्रम और सिद्धान्त होंगे। कभी-कभी ये इतने भिन्न होते हैं कि वे परस्पर विरोधी भी कहे जा सकते हैं। निर्वाचकगण इन दलों के लोगों को संसद के लिये इसी आधार पर चुनते हैं कि उनके सिद्धान्त और कार्यक्रम कितने अच्छे हैं और जब किसी विशेष दल का संसद् में बहुमत हो जाता है, तो वह शासन-व्यवस्था संभालने का अधिकारी हो जाता है। उस समय जनता तथा निर्वाचकगण को यह अधिकार होता है कि उन कार्यक्रमों तथा सिद्धान्तों के पालन किये जाने की वे आशा करें। संसदात्मक प्रजातंत्र का यही अर्थ है और ऐसा यूनाइटेड किंगडम में है और इस विधान में भी इसी के समावेश करने का प्रयास किया गया है। अत: यह प्रश्न विचारणीय है कि ऐसी दशा में राज्य के लिये न निदेशक सिद्धान्तों का उस संसदात्मक प्रजातंत्र से कहां तक सामंजस्य है, जिसमें अधिशासी ऐसी संसद् के प्रति उत्तरदायी होता है, जो कि उस दल के सिद्धान्तों और कार्यक्रम की अच्छाई-बुराई के आधार पर चुनी गई है, जो पदारूढ़ है। हमारे विचार करने के लिये वह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। हम उन स्थितियों की कल्पना कर सकते हैं, जिनमें जनता द्वारा कोई

[महबूबअली बेग साहब बहादुर]

ऐसा दल भेजा जा सकता है, जिसके सिद्धान्त और कार्यक्रम इस अध्याय में दिये हुये सिद्धान्तों के विरुद्ध हों। हमें विदित है कि अभी-अभी ब्रिटिश संसद् में अनुदारवादियों ने लोहे और फौलाद के राष्ट्रीयकरण की अस्वीकृति के लिये प्रस्ताव उपस्थित किया हैं कल हमने सुना कि बड़ी गड़बड़ी हुई। नि:सन्देह मजदूर दल ने उस प्रस्ताव को गिरा दिया; यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि राजनैतिक दलों के अलग-अलग और खास-खास कार्यक्रम होते हैं और संसदात्मक प्रजातंत्र में अपने कार्यक्रम के औचित्य पर ही दलों को संसद् के लिये चुना जाता है। इस विधान में जब इस स्थिति को ग्रहण किया गया है, तो उसमें इन निदेशक सिद्धान्तो का क्या स्थान है? उनके लिये स्पष्टतया कोई स्थान नहीं है। जिन बातों को यहां प्रावहित किया जा रहा है, वे प्रजातंत्र के तथा संसदात्मक प्रजातंत्र के विरुद्ध हैं। क्या इन सिद्धान्तों से यह प्रयोजन है कि इस विधान में निर्धारित कुछ कार्यक्रमों तथा सिद्धान्तों का देश के राजनैतिक दलों के साथ गठबन्धन कर दिया जाये? नि:संदेह ऐसा नहीं है, अन्यथा वह प्रजातंत्रवाद नहीं है, अथवा कम से कम वैसा प्रजातंत्रवाद नहीं है जिसकी व्यवस्था यह संविधान कर रहा है; अर्थात् संसदात्मक प्रजातंत्र जो जनता के प्रति उत्तरदायी हो। अत: मेरा निवेदन यह है कि ये सिद्धान्त असामयिक है तथा संसदात्मक प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं।

कुछ लोगों ने यह कहा कि ये मौलिक सिद्धान्त है। मेरा निवेदन है कि यदि ये इतने मौलिक हैं कि विधान में संशोधन करने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से इनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता, तब तो इनको यहां स्थान नहीं मिलना चाहिये। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में मेरा निजी विचार यह है कि ये वे अधिकार हैं, जो विधान-मंडल के क्षेत्र से परे कर दिये गये हैं तथा वे इतने मौलिक हैं कि कोई भी दल उनके लिये निषेधाधिकार नहीं रखता है यदि ये सब अधिकार जो यहां दिये गये हैं मौलिक हैं, तो इनको मौलिक अधिकारों के अध्याय में रख देना चाहिये। मेरे विचार से उनमें बहुत से मौलिक अधिकार नहीं है, वरन् किसी

राजनैतिक विचारधारा के कार्यक्रम के पदमात्र हैं। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि इन वाक्यखंडों को यहां स्थान ही न मिलना चाहिये और मेरा विश्वास है कि इसीलिये डा. अम्बेडकर ने इसी प्रकार के कार्यक्रम का विरोध करते हुये, जो कि प्रो. के.टी. शाह के संशोधन में ग्राम-पंचायत के सम्बन्ध में दिया हुआ था, कहा था कि यह विधान केवल एक रचना है जिसके द्वारा कोई भी दल जो शक्ति सम्पन्न हो जाता है, अपने राजनैतिक विचारों, सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के अनुसार अपने कार्यक्रम का अभिपूरण कर सकता है। यह बिल्कुल सही है। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यह कार्यक्रम किस प्रकार विधान में आ सकता है। या तो वे मौलिक अधिकार हैं या नीति के विषय हैं। यदि वे इतने मौलिक हैं कि कोई भी विधान-मंडल उनमें हस्ताक्षेप नहीं कर सकता है तथा उनको विधान-मंडल और अधिशासी वर्ग के क्षेत्र से परे रखना आवश्यक है, तब तो उनको कहीं अन्यत्र ही रखना चाहिये। मेरे विचार से ये मौलिक तो कदापि नहीं हैं, हां केवल राज्य की नीति मात्र हैं। और डा. अम्बेडकर ने यह ठीक कहा है कि यह संविधान केवल रचना मात्र है तथा कोई भी दल जो शक्ति प्राप्त कर लेता है, वह इसके द्वारा अपने सिद्धान्तों तथा कार्यक्रमों, आदर्श तथा विचारधाराओं का अभिपूरण कर सकता है।

श्रीमान्, इसके पश्चात् हमें यह देखना है कि क्या ये प्रवर्त्तनीय है या नहीं। इस प्रकार के विधान में सिवाय उन खण्डों के जिनमें किसी प्रकार से प्रकार्य करने का अधिकार गवर्नर, गवर्नर-जनरल अथवा अन्य किसी प्राधिकारी के स्वविवेक पर छोड़ा गया है, अन्य कोई ऐसा खंड नहीं होना चाहिये, जिसका प्रवर्त्तन न किया जा सके। मान लीजिये, कोई सरकार, जो अधिकार सम्पन्न हो जाती है, इन बातों की कोई चिन्ता नहीं करती है, इन बातों की अवहेलना तथा उपेक्षा करती है, इस कारण कि जनता से उस सरकार को भिन्न प्रकार का आदेश मिला है। जनता ने इसके प्रोग्राम को मान लिया है और इसलिये चुनाव में सफल हो कर पदारूढ़ हुए दल को यह लगता है कि ये निदेश, जो आपने यहां दिये हैं, उस जनादेश के विरुद्ध हैं जो जनता ने उसके प्रोग्राम को चुनाव में अपनाकर उसे दिया है। हो सकता है कि ऐसी अवस्था में वह उन निदेशों की उपेक्षा करती है। अथवा यही मान लें कि जानबूझकर वह दल इनके विरुद्ध काम करता है तो क्या होगा? कौन यह निर्णय करेगा कि क्या बात ठीक है और कौन सी गलत।

[महबूबअली बेग साहब बहादुर]

मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने यह कहा कि देश निर्णय करेगा। देश इन निदेशक सिद्धान्तों पर विचार नहीं करता है। वह तो सम्बन्धित दलों के आदर्श कार्यक्रमों और सिद्धान्तों पर विचार करता है। इसी को संसदात्मक प्रजातंत्र कहते हैं। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि केवल अनुच्छेद 31 के लिये ही नहीं, वरन् समस्त अनुवर्त्ती अनुच्छेदों—समूचे के समूचे अध्याय—के लिये भी स्थान नहीं है। यह बात हो सकती है कि किसी दल विशेष ने यह सोचा है कि यदि उसने ऐसी संविधान-परिषद् के द्वारा, जिसमे उसका बहुमत है, इस संविधान में इस प्रकार के कुछ सिद्धान्त न रखे तो देश में अन्य राजनैतिक दल उस दल की नीति की आलोचना करके यह प्रयत्न करें कि इस शक्तिसम्पन्न दल के विरोध में जनता उनकी ओर हो जाये। सम्भव है कि इन निदेशक सिद्धान्तों के रखे जाने का यह कारण हो। यदि यह बात नहीं है तो सम्भवत: यह सोचते हैं कि ये मौलिक अधिकार हैं। मुझे विश्वास है कि ये मौलिक अधिकार नहीं कहे जा सकते हैं। अत: जो दल शक्ति-सम्पन्न है, उसकी यह उत्कण्ठा है कि वह यह कहकर निर्वाचकगणों को सान्त्वना दे कि हमने ऐसा विधान बनाया है, जिसमें हमने उन प्रावधानों को रखा हैं जो यदि अधिक नहीं तो कम से कम उन सिद्धान्तों तथा प्रोग्राम के समान कल्याणकारी हैं, जो सिद्धान्त तथा कार्यक्रम किसी अन्य ऐसे दल के हैं, जैसा कि समाजवादी दल है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि ये सिद्धान्त गलत हैं। इस विधान में इनके लिये कोई स्थान नहीं है और चूंकि इनका प्रवर्त्तन नहीं किया जा सकता है, ये व्यर्थ हैं और अच्छा होगा यदि इनको निकाल दिया जाये।

***श्री के. हनुमन्थय्या:** श्रीमान्, मेरे समाजवादी मित्र श्री दामोदर स्वरूप सेठ ने जो संशोधन पेश किया है, मैं उसका विरोध करता हूं और जिस रूप में अनुच्छेद है उसी रूप में उसका पूर्ण समर्थन करने के लिये मैं सभा से कुछ निवेदन करना चाहता हूं। यदि वह माननीय सदस्य जिसने संशोधन सं. 863 पेश किया है, अनुच्छेद 30 तथा अनुच्छेद 31 खंड (1) और (2) को सावधानी से पढ़ें तो उनको यह अवश्य विदित होगा कि इनमें वे सब विचार दिये हुये हैं जिनका वे समामेलन करना चाहते हैं। वास्तव में पूर्व वक्ता श्री बेग ने इसी आधार पर मूल खंड तथा

संशोधन पर अपने विरोध को आश्रित किया है। जो कुछ वह अपने संशोधन से प्राप्त करना चाहते हैं, वह इन दो खंडों में दिया हुआ है; अत: इस संशोधन को स्वीकार करना बिल्कुल व्यर्थ है।

श्री बेग के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि उनकी विचारधारा के समर्थकों का यह स्वभाव हो गया है कि वह सदैव बहुसंख्यक दल की टीका-टिप्पणी किया करते हैं और उनके तर्क के सम्बन्ध में केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि उनके बारे में ''अंगूर खट्टे हैं'' की कहावत चरितार्थ होती है। चूंकि आजकल उनके मत वाले लोग अल्पसंख्यक हैं, इसीलिये वे यदाकदा इस प्रकार के समर्थक देश से उस विचारधारा को मनवाने में सफल हो जाते हैं तो इसमें कोई पाप, कदाचार अथवा आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु यह बात कि वह ऐसा नहीं करा सके हैं, ऐसी है जिससे उनकी अयोग्यता व्यक्त हो जाती है। चाहिये तो यह था कि वह इस असफलता को स्वीकार कर लेते, पर ऐसा वह नहीं करते। पर यह भी साफ है कि बहुसंख्यक दल के विरुद्ध भी वे वाक्यवाण छोड़ न पायेंगे। उनकी इस दलील का—कि इस विशेष धारा अथवा अनुच्छेद के पीछे यह प्रयोजन छिपा हुआ है कि विशेष प्रकार की सरकार ही पदारूढ़ हो का—भी मैं इसी प्रकार का उत्तर देता हूं। यह बात ठीक है कि आज से कुछ शताब्दियों पूर्व इस देश में प्रजातंत्रात्मक शासन की बात करना भी पाप समझा जाता था। उस समय तो यही सवाल रहता था कि कोई विशेष राजा अथवा कोई विशेष सम्राट राज्य करे। किन्तु व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष के देश पर राज्य करने के दिन सर्वदा के लिये चले गये हैं। अब प्रजातंत्र का युग है। किसी विशेष प्रकार की शासन-व्यवस्था का जनता अथवा राज्य पर किसी विशेष समय के लिये ही अधिकार रहता है। एक समय था जब व्यक्तिवाद तथा 'अकेला छोड़ो' की नीति शासन-व्यवस्थाओं को अच्छी लगती थी। उस नीति को अब तिलांजलि दे दी गई है। अब सामाजिकीकरण का बोलबाला है। अब युगधारा समाजवाद की ओर है और उसी की ओर सबका झुकाव है। इस सभा के बहुत से माननीय सदस्य अनुच्छेदों में दिये हुये आदर्शों से भी आगे बढ़ना चाहते हैं परन्तु प्रारूप-समिति ने बहुत सुन्दर वाक्य रचना की है, जो इनमें से किसी भी अति का समर्थन नहीं करती है; और साथ ही साथ उसमें इतनी बुद्धिमानी से शब्दों का प्रयोग किया गया है कि यदि साम्यवादी दल भी अधिकार सम्पन्न हो जाता है, तो वह अनुच्छेद 30 तथा अनुच्छेद 31 के खंड (1) तथा

[श्री के. हनुमन्थय्या]

(2) के अधीन अपनी विचारधारा का अभिपूरण कर सकेगा। इन धाराओं के अन्तर्गत किसी भी दल को अपने प्रोग्राम के अभिपूरण करने में रुकावट न होगी। यदि कोई व्यक्ति शब्दों का अध्ययन करे तो उसे यही विदित होगा जो मुझे हुआ है। यह कहना कठिन है कि किस शब्द अथवा वाक्य पर वह आपत्ति कर सकता है। इस कारण संशोधन सं. 836 व्यर्थ है और जिस रूप में अनुच्छेद है उसी रूप में वह इस सभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त करने के योग्य है।

***श्री हुसैन इमाम:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे दु:ख है कि मैं न तो सेठ दामोदरस्वरूप का पूर्ण समर्थन कर सकता हूं और न मैं शासन अथवा प्रस्ताव अथवा इस अनुच्छेद के समर्थकों की ही प्रशंसा कर सकता हूं, जो कि सब अत्यन्त भयान्वित हैं, कि कहीं सभा के सामने ऐसी कोई बात न रख दी जाये, जिसमें समाजवाद की गंध आती है। श्रीमान्, मुझे खेद है कि सरकार किसी को भी सान्त्वना नहीं दे सकी है, न पूंजीपतियों को और न मजदूरों को...।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): सरकार से इस सभा का क्या सम्बन्ध?

***श्री हुसैन इमाम:** मैं वास्तविक तथ्य का वर्णन कर रहा हूं। अनुच्छेदों का लाया जाना दल विशेष नियंत्रण कर रहा है और दल-उद्बोधकों के अधीन संशोधन रोक दिये जाते हैं...।

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति।

***श्री एम. थिरूमल राव** (मद्रास : जनरल): मेरे मित्र कुछ सत्य वर्णन करना चाहते हैं। क्या वह विवादान्तर्गत विषय से संगत नहीं होना चाहिये?

***श्री हुसैन इमाम:** मुझे कह लेने दीजिये, उसके पश्चात् आप जो चाहें कह सकते हैं। श्री गौतम ने भी ऐसा संशोधन रखा था।

***श्री मोहनलाल गौतम** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): क्या मुझे उस संशोधन को पेश करने के लिये बुलाया गया था?

***श्री हुसैन इमाम:** नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** कृपया अध्यक्ष को सम्बोधन करिये और परस्पर तर्क न करिये, अन्यथा मैं भी इस पद से हट जाऊंगा। मैं उनको अनुच्छेद की आलोचना करने

का अवसर दूंगा न कि किसी राजनैतिक दल की आलोचना। जहां तक इस सभा का सम्बन्ध है, इसमें कोई राजनैतिक दल नहीं है।

***श्री हुसैन इमामः** श्रीमान्, मैं आपकी राय पर चलूंगा। मैं एक बात कहना चाहता हूं। भावी राज्य पर कई देयताएं निदेशक सिद्धान्तों द्वारा लाद दी गई हैं। जिस रूप में विधान बनने जा रहा है, उसको ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि इस संशोधन द्वारा मैं केवल यह प्रयास कर रहा हूं कि विधान द्वारा लादी गई देयताओं के पूरा करने के लिये कुछ परिसम्पत्ति का भी प्रावधान हो। इसलिये मैं साधारण सामाजिकीकरण का स्वागत करूंगा। इस संशोधन में जिस सामाजिकीकरण का विचार उपस्थित किया गया है, सामाजिकीकरण नहीं है। उदाहरण के लिये उसमें भूमि के राष्ट्रीयकरण का समावेश नहीं किया गया है। यद्यपि राष्ट्रीयकरण वर्तमान काल में भारत के अनेकों राज्य की सक्रिय नीति है। अतः यह कहना, कि प्रस्तावक महोदय कोई क्रांतिकारी परिवर्तन अथवा मौलिक परिवर्तन चाहते हैं, गलत है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह कहकर कि राज्य को यह, वह तथा अन्य अनेकों बातें करनी हैं, हम भावी राज्य पर देयताएं लाद रहे हैं। ऐसे राज्य के हाथ में कुछ निधि रखने का प्रयत्न करना क्या कोई गलत बात होगी?

यह उचित होगा कि मैं सभा के सामने यह बात रख दूं कि जब मद्यनिषेध लागू करने के प्रयोजन से अमरीका के संविधान में अठारहवां संशोधन करने का प्रस्ताव रखा गया, तो उसको सभा के सामने रखने के बारे में इस कारण से कोई बाधा न हुई कि उस (मद्य निषेध) के प्रसार की बात का कोई उल्लेख संविधान में नहीं है। इसी प्रकार 6 वर्ष के पश्चात्, जब कि उस संशोधन को विखंडित किया गया, तो संविधान की किसी बात से ऐसा करने में कोई बाधा न हुई। क्या ब्रिटिश-विधान में खानों, सरकारी बैंकों तथा लोहे और फौलाद के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के लिये कोई प्रावधान है? ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, पर फिर भी वे ऐसा कर रहे हैं। यदि वर्तमान विधान मजदूर दल के लिये समाजवादी परिवर्तन उपस्थित करने में कोई रुकावट नहीं डालता है, तो मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस संशोधन में दिया हुआ प्रावधान किस प्रकार अनुदार दल को शक्ति प्राप्त करने तथा इन प्रावधानों के प्रवर्त्तन न करने से रोकेगा? यह न्याय

[श्री हुसैन इमाम]

अधिकार नहीं है। यह केवल राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त हैं। शक्ति प्राप्त कोई भी राजनैतिक-दल इन निदेशक सिद्धान्तों की उपेक्षा कर सकता है और कहीं भी ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो कि उस दल के लिए यह कर्त्तव्य निर्धारित करे कि इन निदेशक सिद्धान्तों का अनुसरण किया ही जाना चाहिये। संघ के अध्यक्ष को भी यह अधिकार नहीं दिया गया है कि किसी राज्य को निदेशक सिद्धान्तों के विरुद्ध जाते हुये देखकर भी वह हस्तक्षेप कर सके। अतः मेरा निवेदन है कि इस प्रकार के संशोधन के प्रस्तुत करने से किसी राजनैतिक दल के शक्ति प्राप्त करने में कोई रुकावट नहीं होगी। इसमें कोई त्रुटि भी नहीं है। ये निदेशक सिद्धान्त जिस रूप में रखे गये हैं, पूर्ण रूप से अप्रवर्त्तनीय है। उनसे केवल यह अर्थ निकलता है कि यदि जनता और शासन-व्यवस्था दोनों भली हैं, तो इन निदेशकों का पालन कर लिया जायेगा। मैं समझता हूं कि प्रभावहीन निदेशकों के रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब आप किसी कानून की व्यवस्था करते हैं अथवा कोई आदर्श नियत करते हैं, तब आपको यह भी आवश्यकता होती है कि उन लोगों के बारे में भी व्यवस्था की जाये, जो उस आदर्श पर आचरण करने में असमर्थ हैं और यह सब इसलिये करना पड़ता है कि उस कानून का अतिक्रमण न हो, पर इस प्रकार के अतिक्रमण को रोकने के लिये इसमें कौन से प्रावधान हैं? समस्त निदेशक सिद्धांतों की राज्यशासन व्यवस्थाओं द्वारा उपेक्षा की जा सकती है और इसके लिये कोई उपचार नहीं है। निदेशक सिद्धान्तों के पालन कराने के सम्बन्ध में संघ के प्रधान भी कुछ नहीं कर सकेंगे। केन्द्रीय विधान-मंडल में इस प्रकार का प्रस्ताव न लाया जा सकेगा कि इन निदेशक सिद्धान्तों की उपेक्षा करने वाली सरकार को अपदस्थ कर दिया जाये अथवा इनके बारे में कोई अन्य व्यवस्था की जाये। भारतीय सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत शासकों को जो आदेश-पत्र दिये जाते थे, उनमें केन्द्रीय शासन या राज्य मंत्री को यह अधिकार दिया जाता था कि वह उन आदेशों का पालन कराये। परन्तु यहां हमने इस प्रकार की भी कोई व्यवस्था नहीं की है। मुझे तो ऐसी कोई बात विदित नहीं होती है और यदि डा. अम्बेडकर कोई ऐसी विधि बताने की कृपा करें, जिसके द्वारा राज्य के शासनों को निदेशक सिद्धान्तों के उल्लंघन करने से रोका जा सकेगा, तो मैं उनका कृतज्ञ होऊंगा। विधान-मंडल द्वारा हस्तक्षेप करने की कोई विधि होनी चाहिये। प्रांतीय विधान-मंडल हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, क्योंकि प्रान्तीय सरकार उत्तरदायी सरकारें हैं। यदि निदेशक सिद्धान्तों के अनुसार काम नहीं होता है, तो केवल मंत्रिगण

ही नहीं वरन् समस्त विधान-मंडल भी उसके लिये उत्तरदायी होंगे। अतः इस बात का परीक्षण करने के लिये, कि निदेशक सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है अथवा नहीं, कोई उच्च प्राधिकारी होना चाहिये। इन आधारों पर यदि कोई प्रावधान नहीं बनाया जाता, तो वह यही सिद्ध करेगा जैसा कि एक माननीय सदस्य ने बताया कि इन सिद्धान्तों को इसलिये यहां रखा गया है कि आलोचना बन्द हो जाये और एक अच्छा विज्ञापन हो जाये कि हमारे विचार सुन्दर हैं। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि सभा इन संशोधनों पर और भी अधिक निरावेश होकर विचार करे और यदि इन संशोधनों में कुछ अच्छाइयां हैं, तो उनका केवल इस आधार पर परित्याग न करे, कि उनको एक ऐसे सदस्य ने प्रस्तुत किया है, जो बहुसंख्यकों के लिए मान्य व्यक्ति नहीं है। हम विधान-निर्माण कर रहे हैं और मैं सभा से निवेदन करूंगा कि इस कार्य में हमें और भी अधिक उदार, आराधक तथा सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिये और विचारों के मूलरूप को समझ कर उन्हें स्वीकार करना चाहिये और यह नहीं सोचना चाहिये कि इन संशोधनों से किसी दल को लाभ होगा। और किसी दल को लाभ होने की सम्भावना भी नहीं है। यह बहुत आवश्यक है कि सामाजिकीकरण के लिये किसी प्रकार का प्रावधान होना चाहिये। मैं यह कहता तो हूं पर फिर भी मैं वहां तक नहीं जाना चाहता, जहां तक श्री दामोदरस्वरूप गये हैं परन्तु विधान में अपनी विचारधारा का कुछ संकेत तो हमें करना चाहिए। उदाहरण रूप में कोयले की खानों के राष्ट्रीयकरण के विषय को ही लीजिये, जिसको ब्रिटिश सरकार ने अन्तिम लक्ष्य के रूप में बहुत समय पूर्व स्वीकार कर लिया था। 1935 में जिस समिति ने इस विषय पर रिपोर्ट दी थी, उसने इसे अन्तिम लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया था, यद्यपि उस समय इंग्लैंड में अनुदार दल शासनारूढ़ था। मैं निवेदन करता हूं कि इन संशोधनों पर निरावेश होकर विचार करना चाहिये और यदि इनमें कुछ अच्छाइयां हैं, तो विधान के मसौदे के प्रस्तावक महोदय द्वारा उसकी स्वीकृति हो जानी चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अपने देश के लिये विधान-निर्माण करने के विषय को विचार में रखते हुये यह अनुच्छेद बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें कम से कम हमारे विचारगत उद्देश्यों का चतुर्थांश हैं क्योंकि प्रस्तावना में हमने यह कहा है कि न्याय, समानता और बन्धुत्व प्राप्त कराने के उद्देश्य से हम यह

[श्री महावीर त्यागी]

विधान बना रहे हैं। श्रीमान्, यही केवल एक खंड है जो सीधे न्याय से सम्बन्ध रखता है और न्याय की व्याख्या यहां सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय के रूप में की गई है। श्रीमान, वास्तव में इसके अन्तर्गत जो कुछ हम चाहते हैं, वह सब कुछ आ जाता है। इसके अन्तर्गत समस्त नारे एक विशेष रूप में आ जाते हैं। यह सामाजिक और आर्थिक न्याय ही है, जिसकी मांग संसार के उग्र से उग्र समाजवादियों द्वारा पेश की जाती है। वास्तव में यह खंड विधान की धुरी है, परन्तु फिर भी इसकी भाषा की आलोचना करने की मेरी इच्छा है। भाषा के विचार से खंड शक्तिशाली नहीं है, वह कुछ अटकता-सा है। इस विधान के निर्माण करने में हमारा यह उद्देश्य है कि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय प्राप्त करायें, परन्तु खंड में जिस प्रकार का शब्दविन्यास है, उसमें दुर्भाग्यवश अनेकों अटकने वाले उपवाक्य खंड हैं। उस में दिया हुआ है कि ''राज्य का प्रयास होगा... वृद्धि करे''। मेरे विचार से मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन द्वारा पेश किये संशोधन से खंड का उत्तम रूप हो जाता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, एक बात के बारे में मैं कुछ सूचना चाहता हूं। चूंकि माननीय सदस्य इस खंड का समर्थन कर रहे हैं, क्या मैं उनसे पूछ सकता हूं कि वे कृपाकर इस खंड में प्रयुक्त 'inform' शब्द की व्याख्या करें।

***श्री महावीर त्यागी:** 'inform' शब्द का अर्थ है कि संस्थाओं को राष्ट्रीय जीवन से अनुप्राणित करना। 'inform' एक बड़े मुहावरे का शब्द है, जिसका इस वाक्य खंड में प्रयोग किया गया है। यह वाक्य खंड को सुन्दरता प्रदान करता है। 'inform' शब्द का अर्थ है कि संस्था के निर्माण का आधार न्याय होना चाहिये। 'inform' शब्द को आप सूचना विभाग के साधारण अर्थ में न समझें।

श्रीमान्, यह खंड बड़ा अटकता-सा है। मैं डा. अम्बेडकर तथा उनके अन्य साथियों से यह निवेदन करूंगा कि वे सभा की सब प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करें। जब हम किसी यथार्थ वस्तु को विधान में रखना चाहते हैं तो इन स्मृतियों को हमारी इच्छाओं तथा विधान के मध्य क्यों कर हस्तक्षेप करना चाहिये? उनको इसे निरपेक्ष रूप से स्पष्ट कर देना चाहिये कि विधान का प्रयोजन सामाजिक,

राजनैतिक तथा आर्थिक न्याय प्राप्त कराने से है। अतः श्रीमान, उनको 'प्रयास (strive to)' शब्द का प्रयोग क्यों कर करना चाहिये? मान लीजिये कोई व्यक्ति मुझसे कुछ सिफारिश चाहता है और मैं कहता हूं कि ''मैं प्रयास करूंगा'' तो इसका अर्थ यह है कि मैंने वचन नहीं दिया। यह क्यों नहीं कहा जाता है कि ''राज्य वृद्धि करेगा?''

और फिर उस में यह कहा गया है कि ''राज्य का प्रयास होगा कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जितना हो सके, परिणामकारी रूप में, स्थापना तथा रक्षा करके जिसमें... वृद्धि करें''। इस खंड में इतने अटकने वाले खंड क्यों रखे जायें? यह क्यों कहा जाये कि ''जितना हो सके''? यदि कोई सरकार ऐसा नहीं कर सकती है, तो हम उस सरकार को नहीं चाहते हैं। यदि कोई राज्य ऐसा नहीं कर सकता, तो उस राज्य से हमें क्या लाभ? राज्य का यही कार्य समझा जाता है कि कानून और व्यवस्था का पुलिस और फौज द्वारा केवल संधारण करना। हम पुलिस-राज्य नहीं चाहते हैं। सच पूछा जाये तो समस्त सुव्यवस्था तथा शान्ति जो मनुष्य समाज में पाई जाती है, वह इसलिये नहीं है कि किसी सरकार ने उसे स्थापित किया है। वे तो समाज के मूल में कार्य करने वाली प्रवृत्तियों से पैदा हुये हैं। यदि सरकार रखने की प्रथा का अन्त भी कर दिया जाये, तो भी सुव्यवस्था भली भांति कायम रही आयेगी। यह मानव का सहज गुण है कि वह दूसरों से मिलकर रहना चाहता है, अतः संसार में शान्ति तथा अक्षोभ होने का श्रेय उन लोगों का होता है, जिनसे मिलकर कोई समाज बनता है। सरकार का सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वह लोक-कल्याण की वृद्धि करे। इसीलिये सरकारें होती हैं। यदि सरकार ऐसा नहीं कर सकती है, तो उस में इतनी ईमानदारी होनी चाहिये कि वह हट जाये और दूसरों को अवसर दे। श्रीमान्, राज्य के लिये यह अनिवार्य कर देना चाहिये कि 'जितना हो सकें' इन शब्दों के बगैर लाये हुये वह सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय प्राप्त कराकर लोक-कल्याण की वृद्धि करे। मेरी डा. अम्बेडकर से प्रार्थना है कि वे उन लोगों की सम्मति पर ध्यान दें, जो लोग कि जनसाधारण श्रेणी के हैं, अथवा जिन्होंने मेरे समान इंग्लैंड में या अन्यत्र किसी विधि-विद्यालय में विधि की शिक्षा नहीं पाई है।

दुर्भाग्यवश मेरी शिक्षा तो जनता की सेवा में रत रहने से ही हुई है, अतः मेरी सभा से प्रार्थना है तथा निवेदन है कि वह जनता की इच्छाओं को पूरा करे।

[श्री महावीर त्यागी]

मुझे आशा है कि इस खंड के शब्द विन्यास में इस प्रकार का परिवर्तन मेरे वकील मित्रों द्वारा कर दिया जायेगा कि राज्य के लिये यह अनिवार्य हो जाये कि वह लोक-कल्याण की वृद्धि करे। मैं शब्दों में विश्वास करने वाला व्यक्ति नहीं हूं, वरन् विचार तथा कर्मों में विश्वास करने वाला हूं। मैं केवल विचार प्रस्तुत कर सकता हूं। डा. अम्बेडकर शब्दों में विश्वास करने वाले हैं, अतः वे इस विचार की अभिव्यंजना के लिये उपयुक्त शब्द सोच सकते हैं। इस खंड को बहुत शक्तिशाली तथा असन्दिग्ध बना देना चाहिये। सरकार के लिये यह प्रमुख तथा आवश्यक कर्त्तव्य बना दिया जाना चाहिये कि वह लोक-हित-वृद्धि हेतु ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना तथा रक्षा करे, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय द्वारा राष्ट्रीय जीवन की सब संस्थाएं अनुप्राणित हों। यदि मेरे इस विचार को मान लिया जाता है, तो उग्र से उग्र सुधारवादी भी संतुष्ट हो जायेगा।

***श्री मोहनलाल गौतम** (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या यह वाद-विवाद अब समाप्त किया जा रहा है?

***उपाध्यक्ष:** मैं दोनों संशोधन के पक्ष तथा विपक्ष वालों को वाद-विवाद के लिये यथेष्ट समय दे चुका हूं।

***श्री मोहनलाल गौतम:** क्या आप कृपाकर मुझे बोलने की आज्ञा देंगे?

***उपाध्यक्ष:** मेरा यह विचार है कि वाद-विवाद में हमने यथेष्ट समय—लगभग एक घंटा—ले लिया है और अब उचित है कि डा. अम्बेडकर सभा को सम्बोधन करे।

***श्री मोहनलाल गौतम:** मेरा आग्रह यह है कि मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी। दैवयोग से सेठ दामोदरस्वरूप का संशोधन ऊपर रखा गया और मेरा संशोधन उसके नीचे। अतः आपने यह वांछनीय अथवा आवश्यक नहीं समझा कि मैं उसे पेश करूं। मैं दो या तीन बार खड़ा हुआ और यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे अपने संशोधन पर बोलने का अवसर नहीं मिला।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से संशोधन पर पूर्ण रूप से वाद-विवाद हो चुका है और मैं समझता हूं कि अब उसके पेश करने से कोई लाभ नहीं होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** इस सभा में कांग्रेसियों की गतिविधि के सम्बन्ध में एक सदस्य ने कुछ बातें कहीं हैं। मैं समझता हूं कि उस कथन का प्रतिवाद करना कांग्रेसियों का कर्त्तव्य है। श्रीमान्, क्या मैं आपसे यह निवेदन कर सकता हूं कि उन दोषों का, जो हम पर लगाये गये हैं, खंडन करने का हमें आप एक अवसर दें?

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से यह अच्छा होगा कि वाद-विवाद को यहीं समाप्त कर दिया जाये।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मेरे विचार से यह बहुत ही अनुचित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं देखता हूं कि विधान में दिये हुये इन प्रावधानों के प्रयोजन के सम्बन्ध में इस सभा के उन अनेकों सदस्यों में पर्याप्त भ्रम है, जो इस प्रकार के निदेशक सिद्धान्तों में रुचि रखते हैं। यह बात हो सकती है कि इनके बारे में भ्रम अथवा इनको ठीक-ठीक समझने में कठिनाई इस कारण से हुई है कि प्रश्न के इस स्वरूप के सम्बन्ध में मैंने अपने उस वक्तव्य में कुछ न कहा था, जो कि मैंने इस प्रस्ताव के रखते समय सभा के सामने दिया था। यह बात न थी कि मैं इस प्रश्न को सभा के सामने पूरी स्पष्टता से रखना न चाहता था और इसलिये मैंने इस बारे में मौन साधा। इसके विपरीत मैं तो सभा के सामने पूरी तरह रखना चाहता था, पर मैंने समझा कि मेरा व्याख्यान अत्यन्त लम्बा होने के कारण पहले ही पर्याप्त अरुचिकर हो गया होगा और यह उचित न होगा कि उसे और लम्बा करके और अधिक अरुचिकर बनाया जाये। किन्तु मैं समझता हूं कि यह उचित है कि मैं सभा के कुछ क्षण इस बात को साफ करने के लिये लूं कि इस बारे में संविधान की क्या आधारभूत मान्यता है। मैं पहले कह चुका हूं कि शासन-प्रणाली की दृष्टि से यह संविधान संसदात्मक प्रजातंत्र की स्थापना करता है। संसदात्मक प्रजातंत्र का

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

अर्थ है 'एक मानव, एक मत' हमारा यह भी आशय है कि प्रत्येक शासन अपने प्रत्येक दिन के कारोबार में तथा विनिहित अवधि के उपरान्त, जब कि मतदाताओं को वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से शासन के काम को आंकने का अवसर दिया गया होगा, आलोचना के शिकंजे में रहेगा। इस विधान द्वारा हमने राजनैतिक प्रजातंत्र की स्थापना इसी कारण से की है कि हम किसी प्रकार से भी किसी विशेष जनसमाज का स्थायी एकाधिपत्य स्थापित करना नहीं चाहते हैं। यद्यपि हमने राजनैतिक प्रजातंत्र की स्थापना कर दी है, फिर भी हमारी यह इच्छा है कि अपने आर्थिक प्रजातंत्र के आदर्श की भी रूपरेखा हम इसमें दे दें। हम केवल इसी शासन-प्रणाली का निर्माण नहीं करना चाहते, जिसके द्वारा जनता आये और अधिकार ग्रहण कर ले। इस संविधान का यह भी अभिप्राय है कि उन लोगों के सामने एक आदर्श रख दिया जाये, तो लोग कि भविष्य में मंत्रिमंडल में होंगे। यह है 'आर्थिक प्रजातंत्र' का आदर्श। और जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इसका यही अर्थ समझता हूं कि 'एक मानव, एक मत'। प्रश्न यह उठता है कि क्या इस सम्बन्ध में हमारा कोई निश्चित विचार है कि हम किस प्रकार से आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना करेंगे? ऐसी अनेकों विधियां हैं, जिनके द्वारा लोग विश्वास करते हैं कि आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना की जा सकती है। ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो यह विश्वास करते हैं कि व्यक्तिवाद ही आर्थिक प्रजातंत्र का उत्तम रूप है; ऐसे भी हैं जो समाजवादी राज्य को आर्थिक प्रजातंत्र का सर्वोत्तम रूप समझते हैं; ऐसे भी हैं जो साम्यवादी विचारों को आर्थिक प्रजातंत्र का बिल्कुल ठीक रूप समझते हैं।

यह सोचते हुये कि ऐसी अनेकों विधियां हैं, जिनके द्वारा आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना की जा सकती है, हमने जानूबूझ कर निदेशक सिद्धान्तों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जो निश्चित अथवा असंदिग्ध नहीं है। भिन्न-भिन्न विचारधारा के लोगों के लिये आर्थिक प्रजातंत्र के आदर्श को प्राप्त करने, अपनी विधि के अनुसार प्रयास करने, निर्वाचकगणों से यह आग्रह करने, कि आर्थिक प्रजातंत्र को प्राप्त करने का यही सर्वोत्तम मार्ग है, अर्थात् जिस प्रकार से वे काम करना चाहें उसी प्रकार से कार्य करने का पूरा-पूरा अवसर प्रदान करने के सम्बन्ध में हमने काफी गुंजाइश रखी है।

श्रीमान्, यही कारण है कि भाग 4 के अनुच्छेदों की भाषा इस रूप में रखी गई है और इसी रूप में प्रारूप-समिति ने उसको उत्तम समझा है। किसी ऐसी वस्तु को, 'जो असंदिग्ध नहीं हैं, परिवर्तन जिसका मौलिक गुण हैं' और जिसे परिस्थिति तथा समय के अनुरूप परिवर्तनशील होना चाहिये, उसे निश्चित तथा असंदिग्ध रूप देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। अत: यह कहने से कोई लाभ नहीं कि निदेशक सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं है। मेरे विचार से निदेशक सिद्धान्तों का बड़ा मूल्य है, क्योंकि वे हमारे आदर्श, आर्थिक प्रजातंत्र की रूपरेखा, चित्रित करते हैं। संविधान में हमने जानूबूझकर निदेशक सिद्धान्तों का समावेश किया है और हमने ऐसा इसलिये किया है, क्योंकि हम यह नहीं चाहते थे कि इस संविधान में प्रावहित विविध शासन अभियंत्रों द्वारा हम एक कोरे तथा ऐसे संसदात्मक प्रजातंत्र की स्थापना करें, जिसे हमने यह निदेश न दिया हो कि हमारा आर्थिक आदर्श क्या है और हम कैसी सामाजिक व्यवस्था चाहते हैं। मेरे विचार से यदि वे मित्र, जो इस प्रश्न पर उत्तेजित हो गये हैं, उस बात को ध्यान में रखें, जो मैंने अभी उनके सामने रखी है, अर्थात् इस विधान के निर्माण में हमारे उद्देश्य दो हैं— (1) राजनैतिक प्रजातंत्र का स्वरूप निर्धारण करना; (2) यह निर्धारण करना कि हमारा आदर्श आर्थिक प्रजातंत्र क्या है तथा यह भी निर्धारण करना कि प्रत्येक सरकार का, चाहे वह कहीं भी पदारूढ़ हो, यह प्रयास होगा कि वह आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना करे तो बहत से मिथ्याभ्रम, जिससे अनेकों सदस्य विमुह्य हैं, दूर हो जायेंगे।

मेरे मित्र श्री त्यागी ने मुझ से अनुरोध किया है कि 'प्रयास (strive)' शब्द तथा अन्य ऐसे पदों को निकाल दिया जाये। मेरे विचार से हमने 'प्रयास' शब्द का जिस कारण से उपयोग किया है, उसको उन्होंने समझा है। मेरी समझ में 'प्रयास' शब्द, जो कि विधान में वर्तमान है, बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। हमने इसका इसलिए प्रयोग किया है कि हमारा यह अभिप्राय व्यक्त हो जाये कि यदि ऐसी परिस्थितियां भी आ जायें, जब कि इन निदेशक सिद्धान्तों को ललित करने के लिये सरकार के मार्ग में रुकावटें अथवा बाधायें हों, तो भी उन कठिन तथा बुरी परिस्थितियों में इन आदेशों को पूर्ण करने का वह प्रयास करे। इसलिये ही हमने प्रयास शब्द का उपयोग किया है। यदि ऐसा न हो तो सरकार यह कह सकती है कि परिस्थितियां

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इतनी बुरी थी, अर्थ प्रबन्धन इतना अपर्याप्त था कि हम विधान के अनुसरण करने का प्रयत्न तक नहीं कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि मेरे मित्र त्यागी यह विचार करेंगे कि इस प्रसंग में 'प्रयास' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसको निकालना बहुत बड़ी त्रृटि होगी।

शेष संशोधनों का मुझे विरोध करना है।

***उपाध्यक्षः** केवल दो संशोधन पेश किये गये हैं। मैं उस पर मत लूंगा। पहला संशोधन श्री दामोदर स्वरूप सेठ का है।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता हूं।

***उपाध्यक्षः** इसके पश्चात् संशोधन सं. 867, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, श्री कामत को अपना संशोधन वापस करने के लिये सभा की अनुमति प्राप्त करनी चाहिये।

***श्री हुसैन इमामः** प्रस्तावक महोदय ने संशोधन स्वीकार कर लिया है।

***उपाध्यक्षः** क्या सभा वापस करने की उन्हें अनुमति देती है।

***अनेक माननीय सदस्यः** जी हां।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** मैं अनुमति देने के विरोध में हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि वे वापस करना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, उन्हें वापस कर लेने दीजिये।

***श्री एच.वी. कामतः** इस बात पर सभा में कुछ मतभेद है। एक माननीय सदस्य का यह विचार है कि डा. अम्बेडकर ने इसे स्वीकार कर लिया है। मुझे

नहीं मालूम था कि डा. अम्बेडकर ने उसे स्वीकार कर लिया है। यदि उन्होंने स्वीकार कर लिया है, तो वापस लेने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

***उपाध्यक्षः** क्या आप वापस लेना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** जी हां।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***उपाध्यक्षः** सभा के समक्ष प्रस्ताव है किः

''अनुच्छेद 30 विधान का भाग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 30 विधान में जोड़ दिया गया।

नया अनुच्छेद 30-क

***श्री महावीर त्यागीः** क्या यह खंड ''the'' शब्द सहित स्वीकार किया जाता है?

***उपाध्यक्षः** जिस रूप से यह इस समय वर्तमान है, उसी रूप में स्वीकार किया गया है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं किः

''अनुच्छेद 30 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जायेः

'30-क—राज्य नशे के प्रयोजनार्थ नशीले पदार्थों के सेवन, परिवहण, विक्रय अथवा निर्माण के निषेध का प्रयास करेगा।''

इस विषय पर मैं एक लम्बा व्याख्यान नहीं देना चाहता हूं। अमरीका के विधान में इसको मौलिक अधिकार के रूप में रखा गया है। अमरीका के विधान के संशोधन 21 को मैं पढ़कर सुनाता हूंः

''संयुक्त राज्य के किसी राज्य अथवा प्रदेश अथवा अधीनस्थ प्रदेश में मादक द्रव्यों का इस हेतु से परिवहण अथवा आयात कि उनके कानूनों के विरुद्ध उनको वहां दिया जाये अथवा प्रयोग किया जाये, एतद्द्वारा वर्जित किया जाता है।''

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

श्रीमान्, इस सत्य से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है कि महात्मा गांधी जीवन पर्यन्त यह प्रचार करते रहे कि नशीले पदार्थों के प्रयोग और निर्माण का भारत में निषेध किया जाये; और वास्तव में उस नीति के पालन करने के हेतु भारत में प्रान्तीय सरकारें मद्य-निषेध के सम्बन्ध में कानून बना रही है और उन कानूनों का प्रयोग कर रही है। मुझे सचमुच इस बात का आश्चर्य है कि इस विधान में, जिसको बनाया जा रहा है, भारत में नशीले पदार्थों के विक्रय अथवा निर्माण की मनाई करने के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। हम जानते हैं कि इस व्यसन के कारण अनेकों कुटुम्बों का नाश हो गया है और अनेकों कुटुम्ब दुखी हैं। मेरे विचार से कम से कम इनको निदेशक सिद्धान्तों में, जिनको यद्यपि डा. अम्बेडकर के अनुसार कोई संमोदन प्राप्त नहीं है, रखना ही चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से राज्य मद्य-निषेध के लिये भरसक प्रयत्न कर सकेगा। इस कारण इस खंड का टाल देना महात्मा गांधी की कामनाओं को टाल देना होगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन सं. 873 पेश नहीं किया गया। जो कोई व्यक्ति संशोधन 872 पर बोलना चाहता है, वह बोल सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मेरे मित्र काज़ी करीमुद्दीन साहब ने बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। यद्यपि मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि इसके लिये यहां पृथक खंड की आवश्यकता है; परन्तु मैं यह जरूर चाहता हूं कि खंड 31 में एक ऐसा उपखंड रखा जाये, जिसमें यह समामेलन किया जाये कि मद्य-निषेध राज्य की नीति है। यह सच है कि कांग्रेस ने प्रारम्भ में ही, अर्थात् सन् 1920 ई. में ही मद्य-निषेध को अपने आन्दोलन का एक मुख्य उद्देश्य रखा था। हम में से अनेकों शराब तथा ताड़ी की दुकानों पर धरना देने के कारण जेल गये थे। और मेरी समझ से यह उचित नहीं है कि इस विधान में इस समय जब कि हम राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त रख रहे हैं, तो हम उस में मद्य-निषेध का जिक्र तक न करें। यद्यपि अनुच्छेद 31 के भाग (6) में एक सामान्य खंड है, जिसमें यह दिया हुआ है कि:

> ''बाल्यकाल और युवावस्था का विदोहन तथा आचारिक और आर्थिक परित्यजन से रक्षण हो।''

यह सच है कि इसका भी वही अर्थ है, पर यह बहुत ही सामान्य है और मैं समझता हूं कि मद्य-निषेध इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसको खंड 31 के एक उपखंड के रूप में रखना चाहिये। इस विषय पर लम्बे वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह विदित ही है कि हमारी अनेकों सरकारों ने अनेकों जिलों में मद्य-निषेध की घोषणा कर ही दी है। हम आबकारी-आगम पर जीवित नहीं रहना चाहते हैं जो कि वास्तव में वह आगम है जिसकी प्राप्ति अनेकों मजदूर खानदानों की बर्बादी के कारण होती है। हमारे देश में सब धर्म मद्य-निषेध के सम्बन्ध में एकमत है, अतः मैं समझता हूं कि अपने देश के इस संविधान में हम अनुच्छेद 31 में काज़ी करीमुद्दीन के इस संशोधन को कोई स्थान दे दें। चूंकि यह एक ऐसी बात है, जिस पर समस्त सभा का मतैक्य है, अतः मैं आशा करता हूं कि डा. अम्बेडकर इसका समावेश करना स्वीकार कर लेंगे।

***सेठ गोविन्द दासः** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं, डा. अम्बेडकर पर इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये जोर डालना नहीं चाहता हूं, परन्तु साथ ही साथ मैं अपने माननीय मित्र प्रोफेसर सक्सेना से पूर्णतया सहमत हूं कि मद्यनिषेध की नीति का पालन करने के लिये हम वचनबद्ध है। प्रत्येक व्यक्ति इस बात से परिचित है कि अनेकों प्रान्तों के आगमों में कमी होने पर भी हम इस नीति का अनुसरण कर रहे हैं। यह सत्य है कि अब तक किसी प्रान्त में मद्यनिषेध पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। परन्तु फिर भी केवल प्रान्तों में ही नहीं, वरन्, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों में भी पूर्ण रूप से मद्यनिषेध का प्रयत्न किया जा रहा है। श्रीमान्, यह वास्तव में हमारी परम्परा के अनुरूप नहीं है कि जब कि हम अपने देश के लिये नया विधान रच रहे हैं, तो उसमें हम मद्यनिषेध का उल्लेख न करें। मैं आशा करता हूं कि यदि यह संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता है, तो माननीय डा. अम्बेडकर तथा प्रारूप-समिति विधान में कोई ऐसा उपयुक्त स्थल खोज निकालेगी, जहां मद्यनिषेध का उल्लेख किया जा सके और मेरे विचार से इस देश का प्रत्येक सम्प्रदाय हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी तथा अन्य लोग इस बात से सहमत होंगे कि मद्यनिषेध के सिद्धान्त को इस देश में स्वीकार किया जाये और हमारे विधान में मद्यनिषेध के सम्बन्ध में कुछ हो। यद्यपि मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करने के बारे में अपनी सहमति

[सेठ गोविन्द दास]

प्रगट करूं, फिर भी मैं डा. अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि वे इस विषय पर अपनाई जाने वाली नीति को स्पष्ट कर दें।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, सभा के समक्ष उपस्थित संशोधन के समर्थन करने का मुझे गौरव प्राप्त हुआ है। श्रीमान्, आप जानते हैं कि इस संशोधन में निहित सिद्धान्त पर जनता के किसी वर्ग का न तो कोई मतभेद था और न है। लगभग सभी राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के वर्ग इस सिद्धान्त से सहमत है। इस कारण कोई भी व्यक्ति सरकार से यह आशा कर सकता था कि वह इस सिद्धान्त को आज्ञात्मक अथवा स्थायी विधानाश्रित अनुच्छेद का मूल विषय बनायेगी। यह तो वास्तव में एक बहुत ही मामूली संशोधन है। इस सिद्धान्त को; जिस पर देश में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है, कम से कम इस भाग अर्थात् निदेशक सिद्धान्तों का भाग बना दिया जाना चाहिये। अत: श्रीमान्, मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से आग्रहपूर्वक निवेदन करता हूं कि वे इस संशोधन को स्वीकार करें। यदि वे इसे अनुच्छेद 30 के भाग के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते हैं, तो जैसा कि मेरे एक-दो मित्रों ने सुझाया है, वे इसे अनुच्छेद 31 का भाग बना लें। मैं उनसे एक बार फिर निवेदन करूंगा कि वे मद्यनिषेध को विधान में स्थान दे; क्योंकि इस विषय में किसी प्रकार का भी मतभेद नहीं है। आगम में चाहे जितनी भी कमी हो जाये, लोग इस बात से सहमत हैं कि सरकार आगम के अन्य मार्ग तथा साधन निकाले और इस सिद्धान्त का प्रवर्त्तन करे, जिसका वर्षों से कांग्रेस तथा अन्य दल प्रचार करते रहे हैं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मुझे खेद है कि मुझे अपने माननीय मित्र अर्थात् इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय का विरोध करना पड़ रहा है। मेरे विरोध के ये कारण हैं। हम—मेरा आशय देश के राष्ट्रवादियों से हैं—पूर्ण मद्यनिषेध के सिद्धान्त के समर्थक हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश मेरे मित्र केवल यही बात चाहते हैं और उसके लिये प्रस्ताव करते हैं कि मादक द्रव्यों के बनाने तथा प्रयोग के निषेध को हम इस संविधान में एक निदेशक सिद्धान्त के रूप में रख दें, पर अफीम के बारे में क्या किया जायेगा? अफीम बहुत बुरी वस्तु है, पर इसका देश में पर्याप्त प्रचार है। श्रीमान्, चीन तथा पूर्वीय देश अफीम-सेवन के कारण

ही अपनी वर्तमान स्थिति को पहुंच गये हैं इसलिये मैं तो किसी ऐसे मद्य-निषेध के पक्ष में नहीं हूं, जिसमें सेवन के प्रयोजन के लिये अफीम का निर्माण तथा प्रयोग का निषेध न हो।

श्रीमान्, मैं इस प्रकार के सुधार को विधान के निदेशक सिद्धान्तों में रखने के पक्ष में नहीं हूं। विधान में दिये हुये मौलिक अधिकारों को अथवा निदेशक सिद्धान्तों को मैं ईसा के पहाड़ी पर दिये हुये धर्मोपदेश के समान समझता हूं। श्री भागवत में दिया हुआ है कि छोटा और बड़ा कोई नहीं है, पर यह सत्य है कि छोटे और बड़े हैं। अतः इन सामान्य बातों को मौलिक अधिकारों में रखने से कुछ लाभ नहीं होगा। इन परिस्थितियों में मैं समझता हूं कि जो कुछ हमने (मौलिक अधिकारों में) रखा है, उसमें कुछ और अधिक बढ़ाने से कोई लाभ न होगा। हम प्रजातंत्र के पक्ष में है। हमारी राष्ट्रीय सरकार बनने वाली है। राष्ट्रीय सरकार पंडित जवाहरलाल नेहरू अथवा सरदार पटेल जैसे व्यक्तियों द्वारा संचालित है। जनता के सहयोग के अभाव में वे भी अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकते। जब ऐसी स्थिति है, तो मैं नहीं समझ पाता कि ईसा के पहाड़ी पर दिये हुये धर्मोपदेश के समान मद्यनिषेध के प्रश्न को यहां रखा ही क्यों जाये? श्रीमान, कठिनाइयों के होते हुये भी, आर्थिक अभाव के होते हुये भी, अनेकों प्रतिबंधों के होते हुये भी मद्रास तथा अन्य प्रान्तों की सरकारों ने अपूर्ण रूप से इस सुधार को अपनाया है। मैं अपने मित्रों से धैर्य रखने की प्रार्थना करता हूं। मैं यह चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में अखिल भारतीय नीति हो, जिसमें मद्य तथा अफीम सेवन रूपी बलवान दैत्य से युद्ध करने में प्रान्त और राज्य दोनों मिलकर योग दें।

इन परिस्थितियों में, मैं नहीं समझता कि विधान में इसको निदेशक सिद्धान्त के रूप में रखकर किसी प्रकार का लाभ उठाया जा सकता है। निदेशक सिद्धान्त वास्तव में लाभप्रद है और आने वाले मंत्रिमंडल के लिये ये मार्ग प्रदर्शक का कार्य करेंगे। तीन या पांच वर्ष की पद-अवधि के पश्चात् मंत्रिमंडल के कार्य को जांचने के लिये वे एक प्रकार की कसौटी होंगे। कसौटी के रूप में वे सदैव रहेंगे, परन्तु यदि हम इसे (मद्यनिषेध) विधान में रखें और उसे निदेशक सिद्धान्त के रूप में रखे, तो इससे हम किसी प्रकार अपने लक्ष्य के निकट न पहुंच जायेंगे। इन परिस्थितियों में, मैं इस अनुच्छेद के बढ़ाने का घोर विरोध करता हूं, क्योंकि

[श्री विश्वनाथ दास]

इसके बढ़ाने से इससे अधिक कुछ और न हो सकेगा कि यह एक अतिरिक्त प्रावधान हो जायेगा, जो ईसा के पहाड़ी पर धर्मोपदेश के समान है। मैं चाहता हूं कि इसे क्रियात्मक स्वरूप दिया जाये, तथा कठिनाइयों के होते हुये भी इसे क्रियात्मक स्वरूप दिया जा रहा है। मुझे इस बात में लेशमात्र भी शंका नहीं है कि जब भारत में राष्ट्रीय सरकार पदारूढ़ हो जायेगी और संविधान-परिषद् अथवा राष्ट्रीय संसद् के सदस्यों के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल के मतानुसार वह संचालित होगी, तो उसके लिए इस महान सुधार को अविलम्ब हाथ में लेने के अतिरिक्त और कोई पथ न रहेगा।

यद्यपि यह बात हास्यास्पद लगती है, तो भी कठिनाइयों के होते हुये भी केन्द्रीय सरकार दिल्ली प्रान्त में मद्य-निषेध करने की बात सोच रही है। मैं यह सब इस हेतु कह रहा हूं कि यह व्यक्त हो जाये कि सरकार इस ओर बढ़ने के लिये कितनी व्यग्र है। मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से पुनः निवेदन करता हूं कि महात्मा गांधी के नाम पर भावनाओं को उत्तेजित करने से कोई लाभ नहीं है। हमें यह देखना चाहिये कि यह बात कहां तक व्यवहार्य है। इसे निदेशक सिद्धान्तों में रखने से कोई लाभ न होगा। इन परिस्थितियों में मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान्, मेरा संशोधन भी इसी प्रकार का है और वह सं. 999 है। परन्तु उसके साथ वास्तविक विनोद किया गया है और दो शब्दों के छोड़ देने से मेरा संशोधन बिल्कुल ही बदल गया है। मुझे नहीं मालूम कि कहां, किस समय अथवा कब लिखाई की यह त्रुटि हुई। मेरा संशोधन इस प्रकार पढ़ा जाता है।

***उपाध्यक्षः** परन्तु मैं आपको अब संशोधन पेश करने की आज्ञा नहीं दे सकता हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** जी नहीं, मैं तो केवल उसे पढ़कर सुना रहा हूं। वह इस प्रकार है किः

''अनुच्छेद 30 के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायेंः

'और मद्य के प्रयोग में कमी अथवा मद्य-निषेध इन दोनों रीतियों द्वारा भैषजिक आधार के अतिरिक्त मद्य तथा अन्य मादक द्रव्यों के मुंह द्वारा सेवन का प्रयास करेगा।' ''

''सेवन करने को रोकने के लिये प्रयत्न करेगा'' शब्द होने चाहिये। मुझे एक उर्दू का छन्द याद आता है, जिसे मैं आपकी अनुमति से यहां दुहरा देता हूं:

इलाही हम से मयख्वारों को वो दुनिया: अता होती;
जहां हुक्मन पिया करते, न पीते तो सजा होती।

श्रीमान्, इस अवसर पर मैं इस संशोधन का विरोध करने आया हूं, इसलिए नहीं कि मैं इसके उद्देश्य से असहमत हूं, बल्कि इसलिए कि इसको प्रस्तावक महोदय ने समय से थोड़ा पहले रख दिया है। मेरा विचार है कि काज़ी सैयद करीमुद्दीन का संशोधन ऐसा है, जिसका अनुमोदन हम बड़े बहुमत से कर सकते हैं, परन्तु कठिनाई यह है कि यह उपयुक्त स्थल नहीं है, जहां इस संशोधन को रखना चाहिए। मेरे मित्र चाहते हैं कि यह 30 (क) के रूप में रखा जाये। मेरा निवेदन है कि इसे अनुच्छेद 31 के नीचे रखा जाये, जहां कि समस्त निदेशकों को रखा गया है। उनके संशोधन के लिए वही उपयुक्त स्थान है।

मद्य-निषेध होना चाहिए, यह तो सर्वमान्य बात है ही। मद्य-निषेध गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अंग था (*करतल ध्वनि*) और हम सब उस कार्यक्रम का पालन करने के लिए वचनबद्ध है। गांधी जी के समक्ष हमने प्रतिज्ञा ग्रहण की थी। हमने उस प्रतिज्ञा को स्वतंत्रता के दिवसों पर बीसों वार दुहराया है और अब राष्ट्र के सम्मुख हम उस प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हट सकते। उसको हमें विधान में स्थान देना चाहिए। मैं संशोधन में निहित आदर्श से पूर्णतया सहमत हूं, पर उसको रखने का यह उपयुक्त स्थान नहीं है। जैसा कि मैंने अनेकों बार कहा है और आज फिर कहता हूं कि यह विधान अपने मूल रूप में गांधी जी के विचारों से शून्य है, इस रूप में यह बहुत ही निर्बल है। हमने उनके विचारों को जरा सा भी स्थान नहीं दिया है। मुझे आशा थी कि उनके स्वर्गवास के पश्चात् भी हम उनकी आत्मा को जीवित रखेंगे, परन्तु इस विधान के द्वारा तो उसका भी स्वर्गवास हो गया। उनकी आत्मा के अभाव में मैं समझता हूं कि यह विधान भी मृतकवत् है। उनके कार्यक्रम के पालन करने की हमने प्रतिज्ञा की थी और अति निश्चित तथा शुद्ध रूप से हमने ऐसा किया था। श्रीमान्, ऐसे प्रश्नों पर हम कांग्रेसी समझौता नहीं कर सकते, परिणाम चाहे कुछ भी हो। यह मद्य-निषेध उनके कार्यक्रम में था। यह हमारे निर्वाचन-घोषणा-पत्र में भी था, जिसके आधार पर प्रान्तीय परिषदों के समस्त प्रतिनिधियों का निर्वाचन हुआ, अत: यह कहा जा सकता है

[श्री महावीर त्यागी]

कि हमारे आधाररूप समस्त निर्वाचक गणों ने मद्यनिषेध के कार्यक्रम के पक्ष में अपना मत दिया है और प्रांत की इन निर्वाचित संस्थाओं ने हमें यहां चुनकर भेजा है और इस प्रकार हम यहां जनता के व्यवहृत रीति से निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। और यदि उस आदर्श को इस संविधान में हमने प्रावहित न किया, तो हम सारे निर्वाचक मंडल के प्रति तथा उस जनता के प्रति, विश्वासघाती सिद्ध होंगे, जिसके बारे में हमारा यह सही या गलत दावा है कि हमें उसी की ओर से यह संविधान बना रहे हैं। हमें नहीं भूलना चाहिये कि हम जनता के नाम का उपयोग करते हैं। यदि हम उसकी भावनाओं की सराहना नहीं करते हैं और उन भावनाओं को इस विधान में स्थान नहीं देते हैं, तो हमें जनता के नाम का उपयोग करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं रहता। यदि हम अपने विधान में मद्य-निषेध के विचार को नहीं रख सकते, तो फिर हमें यहां किसलिए भेजा गया है? हम क्रान्ति तथा अनेकों अन्य प्रकार की प्रगतियों के सम्बन्ध में बातें करते चले आ रहे हैं। यदि हम अपने विधान में मद्य-निषेध के छोटे से सुधार को न रख सके, तो यह पुस्तक चिमटे से छूने योग्य भी न होगी। अतः मैं आग्रह करता हूं कि यदि हम अपने विधान के मसौदे में मद्य-निषेध को नहीं रखेंगे, तो वह गांधीजी के विचारों से शून्य विधान होगा, क्योंकि जहां मद्य है, वहां गांधी जी नहीं है और जहां गांधी जी हैं, वहां मद्य नहीं है। सच्चाई यही है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि विधान में किसी उपयुक्त स्थल पर इस संशोधन को समाविष्ट कर देना चाहिए। मैं संशोधन की भावना का समर्थन करता हूं पर केवल इसलिए उसका विरोध करता हूं कि इसे ऐसे स्थान पर रखने के लिए पेश किया गया है, जो उसके लिए उपयुक्त नहीं है। इस संशोधन का आधारभूत भावना का विरोध न करके मैं इन थोड़े शब्दों से इस बात को कहता हूं कि मेरे मित्र ने इस संशोधन के लिए जिस स्थान पर रखने के लिए प्रस्ताव लिया है, वह स्थान इसके लिए उपयुक्त नहीं है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** यदि डा. अम्बेडकर मेरे संशोधन के भावों को स्वीकार करते हैं तथा अनुच्छेद 31 में उसे रखने के लिए उद्यत हैं, तो मुझे वैसा करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

***बी. पोकर साहब बहादुरः** श्रीमान्, मैं इस संशोधन का हृदय से समर्थन करता हूं और ऐसा करने के लिए मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता

हूं, बस एक बात ही ओर सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। एक पूर्व वक्ता ने आर्थिक कठिनाइयों का जिक्र किया है, जो मद्य-निषेध की नीति के प्रवर्त्तन से उपस्थित हो जायेंगी। मैं सभा का ध्यान केवल इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि मद्रास-सरकार तथा मद्रास विधान-मंडल ने मद्य-निषेध की नीति को स्वीकार कर लिया है और उन्होंने बड़े उत्तम प्रकार से इसकी व्यवस्था की है। आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी उस पर बहुत उत्तम प्रकार से कार्य हो रहा है और उन कठिनाइयों का निवारण किया जा रहा है। इसलिए मैं कहूंगा कि आर्थिक कठिनाइयां हमारे मार्ग में बाधक नहीं होनी चाहिए। जैसा कि पूर्व वक्ता ने कहा कि यदि हम गांधी जी के आदर्शों का लेश मात्र भी आदर करते हैं, तो हमारा धर्म है कि यदि हम आदेश-मूलक मूलाधिकारों के अध्याय में मद्य-निषेध का समावेश नहीं कर सकते, तो कम से कम उनका समावेश निदेशक सिद्धांतों के अध्याय में अवश्य कर दें। निदेशक सिद्धांतों सम्बन्धी अध्याय में इसका रखना कोई कठिन बात नहीं है। उस अध्याय में केवल यही तो दिया हुआ है कि जो कुछ यहां कहा गया है, उसे प्राप्त कराने का सरकार प्रयास करेगी। अतः मैं सभा से निवेदन करूंगा कि जो सदस्य यहां हैं, वे अपने सम्बन्ध में यह नहीं कहलाने देंगे कि गांधी जी के स्वर्गवास के सद्योपरान्त ही उनकी कामनाओं तथा विचारों को गहरा गाढ़ दिया गया।

***उपाध्यक्षः** सभा सोमवार, ता. 22 नवम्बर के प्रातः दस बजे तक के लिए स्थगित की जाती है।

तदुपरान्त परिषद् सोमवार, ता. 22 नवम्बर सन् 1948 ई. के
प्रातः 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।